ISSN : 0373-1200
अप्रैल 2003
विज्ञान
अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका
मूल्य : 9.00 रु०
विज्ञान परिषद् के ९ दशक
महामहोपाध्याय डा. गंगानाथ झा
बाबू रामदास गौड़
प्रोफेसर श्री सालगराम भार्गव
विज्ञान परिषद्
90
विज्ञान परिषद्
प्रयाग
विज्ञान परिषद् प्रयाग
सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित
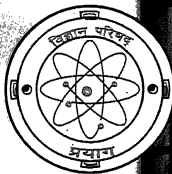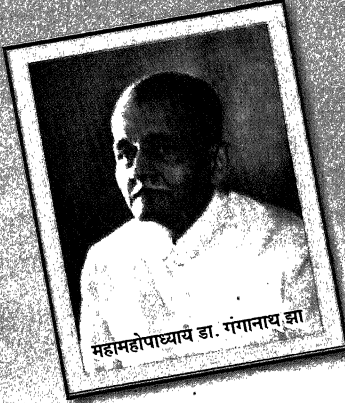
विज्ञान

परिषद् की स्थापना : 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन : अप्रैल 1915
वर्ष : 89 अंक : 1
अप्रैल 2003

मूल्य
दसवार्षिक : 1,000 रुपये
त्रिवार्षिक : 300 रुपये
वार्षिक : 100 रुपये
यह प्रति : 9.00 रुपये

सभापति
डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक
डॉ० शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान परिषद् प्रयाग के लिए
नागरी प्रेस
91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद में मुद्रित
फोन : 2502935, 2500068

आन्तरिक सज्जा व टाइप सेटिंग
शादाब खालिद
79/65, सब्ज़ी मण्डी, इलाहाबाद, फोन : 2651264

आवरण
चन्द्रा आर्ट्स
तालाब नवलराय, इलाहाबाद, फोन : 2558001

सम्पर्क
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 2460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

डा० (श्रीमती) मंजु शर्मा
Dr. (Mrs.) Manju Sharma

सचिव
भारत सरकार
विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय
बायोटेक्नोलॉजी विभाग
ब्लाक–2, 7 वां तल, सी०जी०ओ० कम्पलेक्स
लोदी रोड, नई दिल्ली–110003
SECRETARY
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF SCIENCE & TECHNOLOGY
DEPARTMENT OF BIOTECHNOLOGY
Block-2 (7th Floor) CGO Complex
Lodi Road, New Delhi-110003

अ.शा.प.सं.एस.बी.टी./1361/2002 दिनांक 28.3.2003

माननीय मिश्रजी,

आपका फरवरी 24, 2003 का पत्र मिला। मैं क्षमा चाहती हूं कि व्यस्तता के कारण मैं विज्ञान परिषद प्रयाग के स्थापना दिवस के अवसर पर वहाँ उपस्थित होना संभव नहीं है। परिषद की स्थापना दिवस के अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजती हूँ। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि आप भविष्य में ईसी तरह कार्य करते रहें जिससे कि समाज और देश को लाभ पहुंचता हो। आपको विज्ञान दिवस के पुरस्कार की भी हार्दिक बधाई

सादर,

भवदीया,
(हस्ताक्षर)
(मंजु शर्मा)

श्री शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद - 211002

Tele 4362950/4362881 Fax : 011-4360747/4362884/4363018 E-mail : manju@dbt.nic.in Telegram : 'BIOTECH' Telex 31-74105 BIOT IN

रिपोर्ट

विज्ञान परिषद् प्रयाग का 90वाँ स्थापना दिवस सम्पन्न

– देवव्रत द्विवेदी

10 मार्च 2003 को विज्ञान परिषद् प्रयाग की स्थापना के 90 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में एक समारोह का आयोजन परिषद् सभागार में किया गया। इस समारोह की अध्यक्षता विज्ञान परिषद् के उपसभापति प्रो0 चन्द्रिका प्रसाद जी ने की तथा उत्तर प्रदेश लोकसेवा आयोग, इलाहाबाद के अध्यक्ष प्रो0 के.बी. पाण्डेय मुख्य अतिथि रहे। इसी अवसर पर विज्ञान परिषद् के संस्थापक श्री रामदास गौड़ की स्मृति में आयोजित व्याख्यानमाला के अंतर्गत नई दिल्ली से प्रकाशित मासित्र पत्रिका 'आविष्कार' के सम्पादक श्री राधाकान्त अंथवाल ने 'इक्कीसवीं सदी में विज्ञान संचारकों की भूमिका' विषय पर व्याख्यान दिया।

मुख्य अतिथि प्रो0 पाण्डेय ने अपने उद्बोधन में कहा कि विज्ञान और संस्कृत भाषा का संबंध प्राचीन है किन्तु आज हम इसे भूल चुके हैं। जब आज के विकसित देशों में सभ्यता का आरम्भ भी नहीं हुआ था उस समय हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ विश्व में फैल रही थीं। महर्षि भारद्वाज जैसे वैज्ञानिकों ने हजारों वर्ष पूर्व स्पेक्ट्रोस्कोपी जैस जटिल विषय पर शोध किए थे। संस्कृत वांङ्मय में छिपे इन वैज्ञानिक तथ्यों को उजागर किए जाने की आज महती आवश्यकता है जिससे हमारा विज्ञान पुनः अपनी प्राचीन गरिमा को प्राप्त कर सके। उन्होंने कहा कि विज्ञान परिषद् प्रयाग ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से पिछले 90 वर्षों में विज्ञान के प्रचार–प्रसार की दिशा में जो महत्वपूर्ण कार्य किए हैं और विज्ञान लोकप्रियकरण को जो दिशा व गति प्रदान की है वह प्रशंसनीय है। परिषद् के संस्थापकों ने जिन उद्देश्यों से इसकी नींव रखी थी उन्हें पूरा करने में यह संस्था सफल रही है।

अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में प्रो0 चंद्रिका प्रसाद ने विज्ञान परिषद् से जुड़ी अपनी पुरानी यादों को ताजा करते हुए विज्ञान परिषद् के योगदान पर प्रकाश डाला और इसके उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

कार्यक्रम का आरम्भ डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी 'प्रभामाल' द्वारा प्रस्तुत सरस्वती वन्दना और राष्ट्रभाषा वंदना से हुआ। मुख्य अतिथि प्रो0 पाण्डेय ने दीप प्रज्ज्वलित कर कार्यक्रम का उद्घाटन किया तथा सरस्वती की प्रतिमा पर मुख्य अतिथि तथा अध्यक्ष ने माल्यार्पण किया।

विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र ने अतिथियों का स्वागत करते हुए विज्ञान परिषद् की गतिविधियों और भावी योजनाओं पर प्रकाश डाला। उन्होंने परिषद् की नौ दशकों की विकास यात्रा का वर्णन करते हुए इसके संस्थापकों और उन्नायकों का स्मरण किया और उनके योगदान की चर्चा की।

कार्यक्रम के संचालक देवव्रत द्विवेदी ने श्री रामदास गौड़ जी का संक्षिप्त जीवन परिचय प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् श्री गौड़ के चित्र पर अध्यक्ष तथा मुख्य अतिथि द्वारा माल्यार्पण किया गया।

डॉ0 उमाशंकर मिश्र, श्री बलराम यादव तथा श्री रजनीश सिंह ने क्रमशः प्रो0 चंद्रिका प्रसाद, प्रो0 के.बी. पाण्डेय तथा श्री राधाकांत अंथवाल का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया।

श्री अंथवाल ने अपने व्याख्यान में आज के तेजी से बदलते हुए वैज्ञानिक परिदृश्य में विज्ञान संचारकों को सजग रहने और जनसामान्य से संबंधित मुद्दों को सही मंच पर उचित तरीके से प्रस्तुत करने की आवश्यकता बताई। उन्होंने वैज्ञानिक तथ्यों को जन जन से अवगत कराने और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में विज्ञान संचारकों की भूमिका पर प्रकाश डाला।

इस अवसर पर डॉ0 शिवगोपाल मिश्र तथा डॉ0 विष्णु दत्त शर्मा द्वारा सम्पादित तथा शोध प्रकाशन अकादमी गाजियाबाद द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी विज्ञान लेखन' के द्वितीय खंड तथा श्री दर्शनानन्द द्वारा लिखित पुस्तकों 'आँवला और इसकी बागवानी' एवं 'सब्जी की खेती' का लोकार्पण प्रो0 के.बी. पाण्डेय के द्वारा किया गया।

इस अवसर पर डॉ0 सुप्रभात मुकर्जी, डॉ0 भुवनेश्वर सिंह गहलौत, डॉ0 ईश्वर चंद्र शुक्ल, डॉ0 एस.पी. मिश्र, डॉ0 अरविंद मिश्र, श्री धनंजय चोपड़ा आदि ने भी अपने विचार व्यक्त किए और परिषद् के उज्ज्वल भविष्य की कामना की।

कार्यक्रम में परिषद् के अनेक आजीवन सभ्य तथा अन्य आमंत्रित विद्वान उपस्थित थे।

विज्ञान परिषद् प्रयाग स्थापना दिवस

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र

आज से 90 वर्ष पूर्व चार व्यक्तियों ने मिलकर हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार प्रसार की अभूतपूर्व योजना बनाई। फलस्वरूप विज्ञान परिषद् का जन्म 10 मार्च 1913 को हुआ। उसके 2 वर्ष बाद से 'विज्ञान' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। इसमें पं0 श्रीधर पाठक, बाबू श्याम सुन्दर दास आदि ने सहयोग किया। इस बीच 'विज्ञान प्रवेशिका' पुस्तक भी लिख दी गई। पहले उर्दू में भी पुस्तकें छपीं किन्तु बाद में हिन्दी में ही प्रकाशन होते रहे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के काल तक आर्थिक तंगी के होते हुए भी सम्पादकों के मनोबल के कारण 'विज्ञान' पत्रिका अनवरत प्रकाशित होती रही।

1956 में **पं0 जवाहर लाल नेहरू** ने विज्ञान परिषद् भवन की नींव डाली। क्रमशः यह भवन तैयार हुआ और परिषद् की गतिविधियाँ बढ़ीं।

1958 में **डॉ0 सत्य प्रकाश जी** की सूझबूझ से एक त्रैमासिक शोधपत्रिका का भी प्रकाशन शुरू किया गया। 1970 से डॉ0 आत्माराम के सौजन्य से सी.एस.आई.आर. से 10 हजार की ग्रान्ट मिलनी शुरू हुई। इससे धीरे धीरे 'विज्ञान' के स्तर में सुधार होता रहा और अब 2 लाख वार्षिक अनुदान हो जाने से विज्ञान का कलेवर रंगीन हो चुका है। माननीय मानव संसाधन मंत्री डॉ0 मुरली मनोहर जोशी ने आश्वासन दिया है कि वे इस राशि में वृद्धि कर रहे हैं।

यों तो परिषद् के सभापतियों में अनेक जाने माने वैज्ञानिक तथा राजनेता भी रह चुके हैं किन्तु चार वर्ष पूर्व जब परिषद् ने **डॉ0 श्रीमती मंजु शर्मा** को सभापति बनाया तो उन्होंने अनेक प्रकार से परिषद् को ऊपर उठाने के लिए न केवल कार्यक्रम बनाए अपितु आर्थिक सहयोग भी किया। उन्हीं की प्रेरणा से विज्ञान परिषद् ने **जैव प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश** तैयार करने का प्रोजेक्ट हाथ में ले रखा है।

इसके भी पूर्व एन.सी.एस.टी.सी. के निदेशक श्री नरेन्द्र सहगल ने विज्ञान परिषद् को विज्ञान के लोकप्रियकरण के क्षेत्र में हो रहे प्रयासों को मूर्तरूप देने के लिए चुना था और दो प्रोजेक्ट स्वीकृत किए थे। एक में 'विज्ञान लेखन के व्यक्तिनिष्ठ प्रयास' पर कार्य हुआ और दूसरे में 'विज्ञान लेखन के सौ वर्ष' प्रोजेक्ट पर। इनके अतिरिक्त एक तीसरा प्रोजेक्ट भी परिषद् को दिया गया था– हिन्दी में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय पुस्तकों की संदर्भ सहित निर्देशिका।

इस तरह विगत 10 वर्षों में परिषद् ने अनेकानेक पक्षों पर कार्य किया है। स्वामी सत्यप्रकाश जी ने विज्ञान परिषद् के संस्थापकों की स्मृति में व्याख्यानमालाएँ प्रारम्भ कराने का जो संकल्प लिया था उसको पूरा करने के लिए परिषद् में प्रतिवर्ष 6–7 व्याख्यानमालाएँ सम्पन्न कराई जाती हैं। जैव प्रौद्योगिकी विभाग के द्वारा भी कुछ व्याख्यानों के लिए धन दिया जाता है।

इस तरह विज्ञान परिषद् दो पत्रिकाओं का निरन्तर प्रकाशन करती आ रही है। शब्दावली आयोग तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग से अनेक कार्यशालाओं के आयोजन भी होते रहे हैं।

परिषद् ने गत वर्ष से **मानद फेलोशिप** प्रदान करने का नया अध्याय शुरू किया है। इसके पूर्व परिषद् हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विज्ञान लेखकों को समय समय पर सम्मानित करती रही है।

परिषद् को अखिल भारतीय स्वरूप देने के लिए दिल्ली, जोधपुर, बड़ोदरा, फैजाबाद, वाराणसी

विज्ञान परिषद् प्रयाग के प्रधानमंत्री द्वारा स्थापना दिवस समारोह के अवसर पर उद्बोधन

परिषद् के स्थापना दिवस समारोह में अतिथियों का स्वागत करते हुए परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र →

तथा चित्रकूट में विज्ञान परिषद् की शाखाओं की स्थापना की गई है। इससे परिषद् की सभ्य संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है।

इस वर्ष **विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार ने विज्ञान परिषद् प्रयाग को विज्ञान के लोकप्रिय-करण हेतु एक लाख रुपये का पुरस्कार प्रदान करके सम्मानित किया है।** यह परिषद् के लिए गौरव का विषय है।

विज्ञान परिषद् के लिए अगले दस वर्ष महत्वपूर्ण होने जा रहे हैं क्योंकि तब परिषद् 100 वर्ष पूरा करेगी। अतः आवश्यक है कि हम इस स्थापना दिवस पर अभी से अगले दस वर्षों के लिए ऐसा कार्यक्रम बनावें कि परिषद् देश की सर्वोच्च वैज्ञानिक संस्था बन जाय। स्पष्ट है कि नवयुवकों को परिषद् की गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभानी होगी।

90 वर्षों के बाद हमें सन्तोष हो रहा है कि हम परिषद् के संस्थापकों की आशाओं के अनुरूप कुछ कर सके हैं।

परिषद् 100 वर्ष के बाद भी निरन्तर प्रगति करे, यही कामना होनी चाहिए।

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

← 'स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी विज्ञान लेखन' के दूसरे खण्ड का लोकार्पण करते हुए डॉ0 के.बी. पाण्डेय

विज्ञान परिषद् प्रयाग : एक पावन तीर्थ

प्रो0 कृष्ण बिहारी पाण्डेय

आज हम सभी अपनी प्रिय संस्था **विज्ञान परिषद् प्रयाग** के 90 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में यहाँ एकत्रित हुए हैं। विज्ञान परिषद् यानी हिन्दी भाषा भाषियों का तीर्थ, विज्ञान परिषद् यानी हिन्दी भाषी वैज्ञानिकों का तीर्थ, जहाँ आपको माँ भारती की आराधना में रत अनेक तपस्वी दिखेंगे। आइए इस तीर्थ में आज हम हिन्दी में श्रेष्ठ वैज्ञानिक रचनाओं का अम्बार लगा देने का संकल्प लें और संकल्प लें कि परिषद् के शताब्दी वर्ष तक विज्ञान के किसी छात्र को, विज्ञान के किसी शिक्षक को, विज्ञान के किसी शोधार्थी को कोई विदेशी भाषा पढ़ने को विवश नहीं होना पड़ेगा।

स्थापना दिवस समारोह को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि प्रो. के.बी. पाण्डेय

जैसा हम सभी को विदित है कि 10 मार्च 1913 को इलाहाबाद विश्वविद्यालय के चार अध्यापकों ने विज्ञान परिषद् की स्थापना की। यह संस्था विगत नौ दशकों से अजस्र गति से राष्ट्र भाषा हिन्दी में विज्ञान का अलख जगाती रही। आइए, आज के दिन उन चार राष्ट्रभक्त हिन्दीप्रेमी मनीषियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उनको अपना प्रणाम अर्पित करें। उनमें से एक डॉ0 गंगानाथ झा विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में शिक्षक थे और कालान्तर में विश्वविद्यालय के यशस्वी कुलपति बने। प्रो0 हमीदुद्दीन साहब विश्वविद्यालय में अरबी पढ़ाते थे। बाबू राम दास गौड़ तथा श्री सालिगराम भार्गव क्रमशः रसायन विज्ञान तथा भौतिक विज्ञान के विद्वान थे। परिषद् की स्थापना उस समय हुई जब देश गुलामी की जंजीरों को तोड़ फेंकने के लिए बेचैन था। आजादी की लड़ाई लड़ते लड़ते हमारे इन वैज्ञानिकों को लगा कि विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में स्वभाषा का प्रयोग अत्यन्त आवयश्यक है। विज्ञान परिषद् प्रयाग की स्थापना का यही लक्ष्य था और परिषद् यह लक्ष्य पूरा कर सका ऐसा कहने में अब कोई संकोच नहीं है।

इस मंच पर और इस सभागार में हिन्दी में विज्ञान लेखन के अनेक स्तंभ उपस्थित हैं। उनके बीच इस महोत्सव में मुझे मुख्य अतिथि के रूप में बोलने का

विज्ञान परिषद् प्रयाग के स्थापना दिवस समारोह के अवसर पर मुख्य अतिथि का उद्बोधन

अवसर दिया जा रहा है। इसे मैं अपने गुरुओं एवं गुरु सदृश अग्रजों की कृपा मानता हूँ। यों तो इस धरती पर ज्ञान–विज्ञान की प्रथम रश्मि भारत को ही मिली, किन्तु समय का चक्र ऐसा चला कि हमने वेदों की भाषा संस्कृत को ही विस्मरण के कगार पर पहुँचा दिया और आज वेदों में संचित ज्ञान विज्ञान तक पहुँचने के लिए भी हमें दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। आधुनिक विज्ञान तो पश्चिमी देशों में मुख्यतः अंग्रेजी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं में रचा गया। इस प्रकार जनभाषा हिन्दी वालों के लिए तथा अन्य भारतीय भाषा भाषी लोगों के लिए विज्ञान एक दुर्लभ ज्ञान बन गया। हमारे और विज्ञान के बीच भाषा एक अलंघ्य खाई के रूप में स्थापित हो गई। कुछ समय पूर्व तक हिन्दी में विज्ञान लेखन इतना कम था कि सामान्य भारतवासी वैज्ञानिक ज्ञान तक सहज रूप में न के बराबर पहुँच पाता था। ऐसे में **विज्ञान परिषद् प्रयाग** ने उस सेतु की भूमिका निभाई जिसके सहारे हम विज्ञान तक पहुँचते रहे। आइए इस सेतु का विस्तार करें, इतना विस्तार करें कि हम हिन्दी भाषाभाषियों और विज्ञान के बीच की दूरी मिट जाए, वह अलंघ्य खाईं पट जाए, वह दीवार ढह जाए। इस हेतु हमें दो कार्य करने हैं : एक– हमारे प्राचीन संस्कृत वांङ्मय में संचित विज्ञान–ज्ञान की अपार संपदा की हिन्दी भाषा में प्रस्तुति; दो– अधुनातन वैज्ञानिक ज्ञान का मातृभाषा हिन्दी में विस्तृत लेखन।

विज्ञान के सन्दर्भ में अपने प्राचीन मनीषियों द्वारा अर्जित ज्ञान को पुनरुद्घाटित करने का हमारा आग्रह मात्र भावनात्मकता पर आधारित नहीं है। वेदों उपनिषदों में वर्णित वैज्ञानिक तथ्यों को पुनर्परिभाषित करने का हमारा निवेदन मात्र पृष्ठावलोकन नहीं है। विज्ञान परिषद् के जिस परिसर में इस समय हम सभी बैठ कर विज्ञान की चर्चा कर रहे हैं या यों कहें कि समूचा म्योर सेन्ट्रल कालेज और शायद समूचा प्रयाग विश्वविद्यालय किसी दिन एक भारतीय वैज्ञानिक ऋषि, महर्षि भारद्वाज की प्रयोगशाला का भाग रहा होगा। क्योंकि जिन महर्षि भारद्वाज के गुरुकुल में दस हजार छात्र एक समय में शिक्षा पाते थे, जिन महर्षि भारद्वाज ने वैमानिकी विज्ञान में ग्रन्थों की रचना की, जिन महर्षि भारद्वाज ने स्पेक्ट्रोस्कोपी जैसे विषय पर हजारों वर्ष पूर्व सम्यक् प्रयोग किए, उनका आश्रम कर्नलगंज की कतिपय टूटी–फूटी कोठरियाँ नहीं रही होंगी। किन्तु आत्म विस्मृति हमारी परंपरा है, आत्म विस्मृति हमारी नियति है। पहले हमने महर्षि भारद्वाज को भुलाया, फिर भारद्वाज आश्रम को भुलाया और अंततः भुला दिया उनकी कृतियों को, उनके शोध को।

पूरा देश नहीं तो कम से कम प्रयाग के विद्वानों का और नहीं तो कम से कम प्रयाग विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों का यह दायित्व बनता है कि वे जानें कि ऋषि भारद्वाज कौन थे। ऋषि भारद्वाज का वैज्ञानिक शोध क्या था। लगभग दो वर्ष पूर्व गंगा नाथ झा शोध संस्थान में भारद्वाज महोत्सव के नाम पर एक संगोष्ठी का आयोजन हुआ था जिसमें वैज्ञानिकों की सहभागिता न के बराबर थी। क्योंकि दुर्भाग्य से भारत में संस्कृत और विज्ञान नदी के दो किनारे माने जाते हैं जो परस्पर कभी मिलते ही नहीं। भारत में विज्ञान का मिलन होता है अंग्रेजी से, जर्मन से, फ्रेंच से, अथवा अन्य किसी भी यूरोपीय भाषा से और तभी तो हम जब प्रयाग विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान के शोध छात्र थे तब शोध उपाधि पाने से पूर्व हमें किसी एक यूरोपीय भाषा का ज्ञान अर्जित करना आवश्यक होता था, शायद अभी भी वैसा ही है। आइए हम सब मिलकर गुलामी की मानसिकता के इस कलंक को धोने का प्रयास करें। हमारे प्राचीन ग्रंथों में जितना विज्ञान वर्णित है उसे हम स्वयं पढ़ें, अपनी भावी पीढ़ी को पढ़ायें और पश्चिमी दुनिया को बता दें कि हम तब के वैज्ञानिक हैं जब आपने सभ्यता की किरण नहीं देखी थी। आपने बीसवीं सदी में जाना कि सूर्य की अनंत ऊर्जा का स्रोत हाइड्रोजन है, हमने हजारों वर्ष पूर्व अथर्ववेद में कह रखा है– सोमेन आदित्या बलिनः। इस बात पर विस्तार से चर्चा करने के लिए अलग से संगोष्ठियाँ आयोजित होनी चाहिए। अभी तो बस इतना ही कि हमें अपने प्राचीन विज्ञान को भी मातृभाषा के माध्यम से जन जन तक पहुँचाना है। विज्ञान परिषद् में

ऐसा कर पाने की क्षमता है, ऐसा कर पाने की मेधा है। सौभाग्य से परिषद् के प्रधानमंत्री स्वयं संस्कृत का श्रेष्ठ ज्ञान धारित करते हैं और उन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रंथों का हिन्दी में सहज रूपान्तरण किया है।

एक समाज के रूप में, एक राष्ट्र के रूप में जैसे ही हमने अपनी वैज्ञानिक प्रतिभा का तिरस्कार किया, अपनी वैज्ञानिक मेधा का विस्मरण किया वैसे ही हम पराजित हुए, पराधीन हुए और हजारों वर्षों तक पराधीन रहे। ईश्वर की अनुकम्पा से, शहीदों के बलिदान से आज हम एक स्वाधीन राष्ट्र हैं। हमारी आजादी को लगभग छः दशक हो चुके हैं। हमें अपने में वैज्ञानिक सचेष्टता लानी है, वैज्ञानिक चेतना को विकसित करना है ताकि हम पुनः पराजय की विभीषिका से, पराधीनता के संताप से त्रस्त न हों।

यह वैज्ञानिक चेतना कुछ सफेदपोश लोगों के विज्ञान पढ़ लेने भर से नहीं आएगी। यह वैज्ञानिक चेतना प्रयोगशालाओं में बैठे चंद वेतनभोगियों के शोध के बल पर नहीं आएगी। यह वैज्ञानिक चेतना कुछ भाग्यशाली लोगों को पश्चिमी देशों की प्रयोगशालाओं के द्वारदर्शन करा देने से नहीं आएगी। यह वैज्ञानिक चेतना आएगी, जब विज्ञान हमारे किसान के खेत में होगा। यह वैज्ञानिक चेतना आएगी जब विज्ञान हमारे मजदूर की मुट्ठी में होगा। यह वैज्ञानिक चेतना आएगी जब विज्ञान हमारी माताओं बहनों की रसोई में पहुँचेगा। यह वैज्ञानिक चेतना तब आएगी जब विद्यालय जाता हमारा नौनिहाल सूर्य की रश्मि में विज्ञान देखेगा, पवन के वेग में विज्ञान का दर्शन करेगा, पत्ते पत्ते में विज्ञान पाएगा, एक-एक फूल में विज्ञान की ओर झाँकेगा। विज्ञान यानी प्रकृति का रहस्य, विज्ञान यानी प्रकृति का गर्भ।

किन्तु एक राष्ट्रव्यापी चेतना हमारे अंतर्मन में कैसे उतरे इस प्रश्न का उत्तर है- **विज्ञान परिषद्।** जब तक यह चेतना हमारी राष्ट्रभाषा, हमारी मातृभाषा के कोमल पंखों पर बैठकर नहीं आएगी, हमारे मानस में नहीं बसेगी। अंग्रेजी घोड़े पर सवार होकर जो वैज्ञानिक चेतना आएगी वह हमारे दरवाजे से दौड़ लगाते हुए निकल जाएगी, हमारे सीने रौंदते हुए चली जाएगी, हमें मिलेगी नहीं। हम केवल सुनते रह जाएँगे अंग्रेजी घोड़े की टाप।

हमारा किसान क्या अंग्रेजी समझेगा ? हमारा मजदूर क्या अंग्रेजी समझेगा ? हमें हमारा ज्ञान राष्ट्रभाषा में चाहिए, हमें हमारा विज्ञान मातृभाषा में चाहिए। **यह काम विज्ञान परिषद् विगत नौ दशकों से बखूबी कर रहा है। आइए इसे और मजबूत बनाएँ।** कुछ अंग्रेजी और अंग्रेजियत के मोह में फँसे बन्धुओं ने भ्रम पाल रखा है कि उनका नौनिहाल अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय में पढ़कर बड़ा वैज्ञानिक बन जाएगा, बड़ा डाक्टर बन जाएगा, बड़ा इंजीनियर बन जाएगा। उनसे हमें कहना है, Twinkle Twinkle Little Star करने से अन्धेरा नहीं छँटता, तमस दूर नहीं होता। तमस दूर होता है ज्योति के आने से, मातृभाषा रूपी सूर्य के उदय होने से।

अनादि काल से हमारे जीवन दर्शन का आधार है-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग भवेत्।।

अतः हमें यह भी ख्याल रखना है कि हमारी वैज्ञानिक चेतना मंगलमयी हो। दुर्भाग्य से पश्चिम ने हमें जो विज्ञान दिया है उसकी अंतिम परिणति अमंगलकारी रही है। नागासाकी-हिरोशिमा अभी हम भूल नहीं पाए हैं तब तक जैविक युद्ध की विभीषिका हमारे द्वार पर दस्तक देने लगी है। आश्चर्य नहीं होगा यदि संचार प्रौद्योगिकी, जैव प्रौद्योगिकी तथा क्लोनिंग का नवीनतम विज्ञान हमारे हाथ एक और विनाश का अस्त्र थमा दे। ऐसे में यदि सारा विश्व शान्ति के सन्देश के लिए फिर से बुद्ध और गाँधी की इस धरती की ओर निहारने लगा है तो यह स्वाभाविक ही है। आइए चिंतन करें, क्या विज्ञान परिषद् को हम विश्व शान्ति का एक सशक्त मंच नहीं बना सकते ? यदि हम ऐसा कर सके और मानवता को एक और विनाशकारी विश्व युद्ध से बचा सके तो समझिए हमने अपने ही मंत्र *'माता भूमिः*

शेष पृष्ठ 15 पर ....

इक्कीसवीं सदी में विज्ञान संचारक की भूमिका

राधाकान्त अंथवाल

संचार माध्यमों में पानी चर्चा का विषय बना हुआ है। पिछले कुछ महीनों में राजधानी में जल संबंधी अनेक संगोष्ठियों–सम्मेलनों का आयोजन हो चुका है। प्रधानमंत्री जी लोकसभा के अलावा इनमें से कुछ सम्मेलनों में जल के महत्व पर वक्तव्य दे चुके हैं। वर्षा जल संचयन और स्वजल धारा जैसे कार्यक्रम/योजनाओं की भी खूब चर्चा हो रही है। प्रधानमंत्री 'देश की नदियों को जोड़ने की योजना' के विषय में भी वक्तव्य दे चुके हैं। पिछले साल जोहानसबर्ग, दक्षिण अफ्रीका में आयोजित सतत विकास शिखर सम्मेलन में भी पानी के मुद्दे पर खूब चर्चा हुई। अब 'यूनेस्को' के तत्वावधान में क्योतो, जापान में16–23 मार्च 2003 को तीसरे विश्व जल फोरम का आयोजन होने जा रहा है। 22 मार्च को **विश्व जल दिवस** मनाया जाएगा। यह वर्ष 'अंतर्राष्ट्रीय मृदु जल वर्ष' घोषित किया गया है। कुल मिलाकर पानी का विषय चर्चा में है और आगे भी रहेगा।

हाल ही में नई दिल्ली स्थित सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट ने अपनी 'डाउन टू अर्थ' पत्रिका में देश में विभिन्न कंपनियों द्वारा बेचे जा रहे बोतलबंद पानी की गुणवत्ता के बारे में चौंकाने वाले तथ्य प्रकाशित किए हैं। बोतलबंद पानी में जीवनाशकों की सहय सीमा से अधिक मात्रा में मौजूदगी वाकई चौंकाने वाली थी। इस रिपोर्ट का क्या असर हुआ, उससे हम सब परिचित हैं। यह कार्य विज्ञान संचारकों द्वारा ही किया गया है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हो जाती है। अब उस पानी की गुणवत्ता के विषय में तथ्य सामने लाने का कार्य होना चाहिए जो आम आदमी, आम जनता द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। इसी बीच सामने आई संयुक्त राष्ट्र की 'विश्व जल विकास रिपोर्ट' में सबसे खराब गुणवत्ता वाले 122 देशों की सूची में भारत का स्थान 120वाँ है। इन सब बातों ने आम आदमी को पानी को लेकर, से

विज्ञान परिषद् प्रयाग
रामदास गौड़ स्मृति व्याख्यान

रामदास गौड़ स्मृति व्याख्यान देते हुए श्री राधाकांत अंथवाल

विज्ञान परिषद् प्रयाग के स्थापना दिवस समारोह के अवसर पर दिया गया रामदास गौड़ स्मृति व्याख्यान

सुरक्षित पेय जल को लेकर चिंतित कर दिया है। विज्ञान संचारक आम आदमी से जुड़ी पानी की समस्या, सुरक्षित पेयजल की समस्या और इससे जुड़े तमाम पहलुओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। बोतलबंद पानी के बारे में विज्ञान संचारक द्वारा उजागर किए गए तथ्यों ने सरकार को नए मानक बनाने के लिए बाध्य कर दिया। अब आगे आम आदमी को मिलने वाली पानी की गुणवत्ता एवं उपलब्धता में सुधार लाने के लिए और जहाँ पानी की बर्बादी हो रही है उसे रोकने के लिए सरकार को सही कदम उठाने के लिए बाध्य कर सकते हैं। लेकिन यह सब करने के लिए पानी के बारे में जानना होगा, जानकारी के लिए गहराई में गोते लगाने होंगे।

पिछले महीने एक पत्रकार सम्मेलन में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव प्रो० एस. राममूर्ति से अनौपचारिक बातचीत करते हुए एक पत्रकार ने पूछा, "बोतलबंद पानी के बारे में आपके क्या विचार हैं ?" उन्होंने कहा कि सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट की सुनीता नारायण द्वारा उठाया गया मुद्दा ठीक है लेकिन उससे भी महत्वपूर्ण है आम आदमी को उपलब्ध पानी की गुणवत्ता की चर्चा। उन्होंने दूध की गुणवत्ता के विषय में हम लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने कहा कि दूध में कीटनाशकों की क्या स्थिति है इसकी ठीक से जाँच पड़ताल नहीं हुई है। मुझे उनकी बात याद रही और इस विषय पर और ज्यादा जानने के लिए मैंने भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के प्रो० हेमचन्द्र जोशी जी, जो विज्ञान परिषद् से भी जुड़े हैं, मेरे अच्छे मित्र हैं, 'विज्ञान' और 'आविष्कार' के लिए लिखते आए हैं, से इस विषय पर चर्चा की और उनसे वैज्ञानिक जानकारी देने का आग्रह किया। उन्होंने बताया कि दूध में कार्बनिक अणु पानी की अपेक्षा कहीं ज्यादा मात्रा में मिलते हैं। डी.डी.टी., बी.एच.सी. आदि यौगिक दूध में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में संदूषक के रूप में होते हैं। कारण ये वसा में घुलनशील रसायन हैं, लिपोफिलिक अर्थात् वसाप्रेमी हैं, अंडों और मांस में भी वे पाए जाते हैं, खाद्य श्रृंखला में इन रसायनों की उपस्थिति निश्चित तौर पर खतरनाक है।

पहले पहल 1874 में जर्मनी में डी.डी.टी. का संश्लेषण हुआ था, लेकिन तब वे कीटनाशक के तौर पर इसके महत्व को नहीं पहचाना जा सका। 1935 के आस पास स्विट्जरलैंड के रसायनज्ञ पॉल मूलर ने इस यौगिक के जीवनाशक महत्व को उजागर किया, पहले प्रयोगात्मक तौर पर और फिर पूरे तौर पर इसका इस्तेमाल शुरू हुआ। 1948 में पॉल मूलर को शरीर क्रिया/आयुर्विज्ञान का नोबेल पुरस्कार दिया गया। 1968 के आते आते डी.डी.टी. के कारण पर्यावरण प्रदूषण और इससे जुड़े स्वास्थ्य संबंधी खतरों की चर्चा होने लगी। 1970 के बाद कई देशों ने इसके इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगा दिया। हमारे देश में इसका इस्तेमाल अभी जारी है। इस्तेमाल बंद कर देना चाहिए या जारी रखना चाहिए– यह विचारणीय प्रश्न है।

आम आदमी से जुड़े पानी और दूध के मामले में आज के संदर्भ में नए तथ्यों के प्रकाश में आने से विज्ञान संचारक क्या भूमिका निभा सकते हैं ? क्या एड्स के मामले में हमने और हमारे संचार माध्यमों ने अपनी भूमिका ठीक से निभाई है ? अगर हाँ तो, एच. आई.वी./एड्स वाइरस से संक्रमित बच्चों के साथ भेदभाव की घटनाएँ क्यों हो रही हैं ? स्कूलों–विद्यालयों में जहाँ एड्स शिक्षा देने की बात हो रही है वहीं विद्या के मन्दिरों में ही भेदभाव हो रहा है। लेकिन भेदभाव न हो इसको लेकर इतना भावुक भी न हों कि संक्रमण संबंधी सुरक्षा उपायों की अवहेलना कर दें। सच कहा जाए तो ज्यादातर विज्ञान संचारक इन विषयों को ठीक से समझे ही नहीं हैं। वे पाठकों– आम लोगों को कैसे समझाएँगे ? नई नई प्रौद्योगिकियाँ आ रही हैं। प्रौद्योगिकी के कारण ईंधन से लेकर फसलों में बदलाव आ रहे हैं।

अब मैं ऐसे कुछ और विषयों की बात कर रहा हूँ जिनको चर्चा में लाने में संचार माध्यमों की अच्छी भूमिका रही है। चमत्कारिक यौगिक का खिताब पाने वाले सी.एफ.सी.–क्लोरोफ्लोरोकार्बन के इस्तेमाल के नतीजे हम भुगत रहे हैं। 1930 में थामस मिजले ने इनका संश्लेषण किया था। चार दशक बाद सबसे पहले 1973 में अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डॉ० मैरियो मोलिना ने बताया कि ये

रसायन समतापमंडलीय ओजोन परत को क्षति पहुँचाने वाले खतरनाक यौगिक हैं। सन् 1982 से 1985 के बीच अंटार्कटिका के ऊपर की ओजोन परत में विशाल छेद मिलने से इन यौगिकों के इस्तेमाल, उत्पादन आदि पर प्रतिबंध और साथ ही इनके स्थानापन्नों के विकास का कार्य शुरू हुआ। नए रसायनों के इस्तेमाल और फिर उनको बदलने का सिलसिला सन् 2040 तक चलेगा। हमने इनके इस्तेमाल से क्या पाया और बदले में क्या खोया यह विचारणीय है। यह अनुमान है कि ओजोन परत को उसको पुराना स्वरूप प्रदान करने में 125 से 150 साल लगेंगे। लेकिन इस सी.एफ.सी. की तस्करी के मामले भी सामने आ रहे हैं। इस समस्या पर भी ध्यान देना होगा।

जीवाश्म/ईंधनों के मामले में क्या हुआ ? 1995 से देश में सीसारहित पेट्रोल के वितरण की शुरुआत हुई। सीसे के खतरों से हम अवगत हैं। सन् 1923 से पेट्रोल में टेट्राइथाइल लेड संयोजी की तरह, तरल रूप में मिलाया जाता आ रहा है। आधुनिक कम्प्रेशन इंजनों को उच्च 'आक्टेन रेटिंग' वाले पेट्रोल की जरूरत पड़ती है। सीसा मिलाने से पेट्रोल की आक्टेन रेटिंग बढ़ जाती है, यानी ईंधन की गुणवत्ता और कार्यकुशलता बढ़ जाती है। नतीजतन पेट्रोल की खपत में कमी आती है। लेड एक उत्तम स्नेहक है और इससे इंजन बेहतर ढंग से काम करते हैं। सीसा इंजन को शक्तिशाली बनाने में भी सहायक है। यह ईंधन के असामान्य दहन से उत्पन्न इंजन की 'नाकिंग' को दूर करता है। ऐसे अनेक फायदों को देखते हुए पेट्रोल में सीसे की मात्रा भी लगातार बढ़ाई जाने लगी। लेकिन जब इस चमत्कारी सीसे के कारण मानव शरीर पर पड़ने वाले घातक प्रभावों को सामने लाया गया तो फिर पेट्रोल को सीसामुक्त करने का अभियान शुरू हुआ। फिर इसमें बेंजीन मिलाने का सिलसिला शुरू हुआ जो कैंसरकारक है। अब पेट्रोल में इथेनॉल मिलाने का दौर शुरू हो रहा है।

डीजल का मामला लें। डीजल को अपेक्षाकृत सुरक्षित ईंधन माना जाता था। लेकिन डीजल वाहनों द्वारा सल्फरडाइआक्साइड के उत्सर्जन के कारण बढ़ते प्रदूषण और नतीजतन स्वास्थ्य संबंधी खतरों के कारण 1996 में दिल्ली में वितरित किए जाने वाले डीजल में गंधक की मात्रा को 0.5 प्रतिशत के स्तर तक लाया गया। इसके बाद 1997 में 0.25 प्रतिशत गंधक वाला डीजल उपलब्ध कराया गया। दिल्ली में अप्रैल 2000 से 0.05 प्रतिशत गंधक वाले डीजल को उपलब्ध कराने की अधिसूचना जारी की गई। फिर दिल्ली में सार्वजनिक परिवहन की बसों में सी.एन.जी. का इस्तेमाल शुरू हुआ और अब अन्य वाहनों के लिए 0.025 प्रतिशत गंधक वाले डीजल को उपलब्ध कराने की योजना है।

सी.एफ.सी., पेट्रोल और डीजल के इस्तेमाल से जुड़े खतरों, हानियों को जानने के बाद भी हम तुरंत कुछ सालों की अवधि में इनको आवश्यकतानुसार बदलने या इनके स्वरूप के बदलने का काम नहीं कर सकते हैं। कार्बन डाइआक्साइड जैसी ग्रीन हाउस प्रभाव वाली गैसों का मामला भी कुछ इसी तरह का है। इन उदाहरणों से हमें यह जानना–समझना है कि अब जो नई नई प्रौद्योगिकियाँ आ रही हैं क्या उन्हें सीधे सीधे अपना लेना चाहिए ?

हर क्षेत्र में बदलाव आ रहे हैं। जैव प्रौद्योगिकी के प्रयोग से कृषि और चिकित्सा विज्ञान आदि क्षेत्रों में परिवर्तन आने लगे हैं। बी.टी. कपास के बाद अब देश में आधुनिक तौर पर रूपांतरित सरसों के उत्पादन को मंजूरी मिलने की संभावना है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् द्वारा स्टेम कोशिका संबंधी अनुसंधान चिकित्सीय क्लोनिंग संबंधी कोड का मसौदा तैयार हो चुका है और केन्द्र सरकार को भेजा जा चुका है। जीनोमिकल, जीन चिकित्सा, जीन आधारित औषधियों का दौर शुरू होने वाला है। नैनो टेक्नोलॉजी का दौर शुरू हो चुका है। इन सब विषयों को जानना–समझना जरूरी है। बौद्धिक संपदा अधिकारों को जानना–समझना जरूरी हो गया है। पिछले महीनों में मानव–क्लोनिंग का विषय काफी चर्चा में रहा। फ्रांस के रायलियन पंथ के मानव–क्लोन संबंधी दावों की पुष्टि नहीं हुई है। इटली के वैज्ञानिक डॉ0 एंटीनोरी ने घोषणा की थी जनवरी 2003 में क्लोन शिशु पैदा होंगे। वे पैदा हुए या नहीं, पिछले दो महीनों

से इसकी कोई खबर नहीं है। 14 फरवरी को प्रथम क्लोन भेड़ डॉली को इंजेक्शन देकर मौत की नींद सुला दिया गया। डॉली का जन्म, जीवन और अब मौत सभी बातें विवादों से भरी हैं। उसकी मौत तो जीता जागता उदाहरण है जिसने क्लोनों के स्वास्थ्य और पूरी जिंदगी के प्रति आशंकित कर दिया है। लेकिन अगर यही सही तकनीक किसी संकटग्रस्त प्रजाति को बचाने के लिए इस्तेमाल की जाती है और उसके परिणाम अच्छे निकलते हैं, तो ऐसे मामलों में क्लोनिंग तकनीक के उपयोग का स्वागत है। लेकिन अनावश्यक दुरुपयोग से बचना चाहिए। देश में सेंटर फार सेलुलर एंड मालिक्युलर बायोलॉजी, हैदराबाद द्वारा चीते की क्लोनिंग का कार्य करने की घोषणा की गई है।

मैंने सबसे पहले पानी की चर्चा की थी। दूध का जिक्र किया था। आज नीर और क्षीर दोनों के विवेचन–विश्लेषण की आवश्यकता है। नदियों को जोड़ने वाली योजना का भी पूरी तौर पर विश्लेषण जरूरी है।

एक किस्सा आपको सुना रहा हूँ। वैज्ञानिकों का एक दल 15 सालों से एक ऐसे अनुसंधान कार्य में लगा था जिसमें आर्सेनिक धातु का प्रयोग हो रहा था। आर्सेनिक स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है इसलिए प्रयोग में पूरी एहतियात बरती जा रही थी– सुरक्षा संबंधी तमाम उपायों को ध्यान में रखकर वे लोग कार्य कर रहे थे। वैज्ञानिकों के रक्त के नमूनों की जाँच भी आवश्यक समझी गई। खून की जाँच का काम नाभिकीय औषधि तथा संबद्ध विज्ञान संस्थान (इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लीयर मेडिसिन एंड एलाइड साइंसेज) में किया गया।

खून की जाँच से पता चला कि एक वैज्ञानिक के रक्त में आर्सेनिक की मात्रा सामान्य से बारह गुना अधिक थी। बाकी वैज्ञानिकों के रक्त में आर्सेनिक के मामले में कोई असामान्यता नहीं पाई गई। अब सोचने वाली बात यह थी कि एक जैसी परिस्थितियों में काम करते हुए सुरक्षा संबंधी तमाम उपायों को अपनाने के बावजूद एक वैज्ञानिक आर्सेनिक विषाक्तता की चपेट में कैसे आ गया ?

अब उस वैज्ञानिक के खान–पान, बीमारियों, निवास–स्थान संबंधी पूरा ब्यौरा लिया गया। पता चला कि वे वैज्ञानिक सज्जन दमे के मरीज थे और पेट में गैस की तकलीफ भी उन्हें थी। इन दो बीमारियों के लिए वे बहुत आयुर्वेदिक दवाइयाँ ले रहे थे। ये दवाइयाँ किसी मान्यताप्राप्त कंपनी की न होकर एक पास के वैद्य द्वारा तैयार की गई दवाइयाँ थीं। उन दवाइयों के विश्लेषण से पाया गया कि एक औषधि में आर्सेनिक की बहुत अधिक मात्रा विद्यमान है। इस औषधि के सेवन से उनके दमा और गैस की तकलीफ कम हो गई थी। उन्हें इन औषधियों का सेवन बंद करने को कहा गया। प्रत्येक 48 घंटे बाद उनके खून की जाँच की जानी थी। 15 दिन के बाद स्थिति काफी सुधर गई थी।

यहाँ इस किस्से को सुनाने का मेरा खास मकसद है। आर्सेनिक संबंधी प्रयोग में लगे वैज्ञानिक के शरीर में जाँच के बाद जब आर्सेनिक पाया गया तो तभी यह माना जा सकता था कि काम करने के दौरान ही वह आर्सेनिक विषाक्तता के चपेट में आ रहे थे। अखबार के लिए यहीं तक जा कर इस नतीजे पर पहुँच कर रिपोर्ट बनाई जा सकती थी। विज्ञान लेखन में इन सब बातों को ध्यान रखते हुए आगे छानबीन की जरूरत होती है। इस किस्से के नतीजे से इस बात के महत्व को समझा जा सकता है। प्रकाश के रंग की विवेचना करें तो वह सात रंगों से बना होता है। प्रिज्म की मदद से इन्हें अलग अलग किया जा सकता है। लेकिन लाल रंग से नीचे यानी अवरक्त और बैंगनी रंग से परे का पराबैंगनी हमें दिखाई नहीं देता है। लेकिन वे विकिरण होते तो हैं। इसी प्रकार विज्ञान संचारकों के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के सभी दृश्य और अदृश्य पक्षों को देखने समझने की जरूरत है। जब स्वयं यह सब कर पाएँगे उसके बाद ही पाठकों, आम जनता तक इन विषयों का असरदार ढंग से पहुँचाने का काम कर सकेंगे।

सम्पादक, 'आविष्कार' एन.आर.डी.सी.
20–22, मरुदपुर सामुदायिक केन्द्र
कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली–110048

नाभिकीय आयुधों का निर्माण एवं नैनो टेक्नोलॉजी

डॉ0 आर.एस. दुबे

> मानवता के कल्याणार्थ, नैनो टेक्नोलॉजी के बढ़ते अनुसंधान कार्य पर कानूनी लगाम कसना अत्यन्त आवश्यक होगा, अन्यथा विनाश की विभीषिका में विश्व-बन्धुता तिरोहित हो जाएगी।
>
> *विल ज्वाय, सह-संस्थापक, सन माइक्रोसिस्टम*

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर भारत के राष्ट्रपति मिसाइलपुरुष ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में विज्ञान और टेक्नोलॉजी के प्रति प्रतिबद्धता दोहराई और उन्होंने वैज्ञानिकों से आह्वान किया कि अपनी सारी ऊर्जा नैनो टेक्नोलॉजी के अनुसंधान एवं विकास में लगावें, क्योंकि राष्ट्र को समृद्धिशाली बनाने में इस टेक्नोलॉजी की अहम भूमिका होगी। रक्षा से लेकर हरित क्रांति तक की सृजनात्मकता नैनो टेक्नोलॉजी में समाहित है। देश के सभी तंत्रों को इस उच्च अनुसंधान को गंभीरता से लेना होगा, अन्यथा देश विकास की दौड़ में पीछे छूट जाएगा।

नैनो टेक्नोलॉजी के विकास हेतु भारत सरकार अनेक विशिष्ट परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान कर रही है। नैनो टेक्नोलॉजी आधारित अनुसंधान कार्य मुख्यतः जवाहर लाल नेहरू सेन्टर फार एडवांस्ड साइंटिफिक रिसर्च, हैदराबाद, भारतीय विज्ञान संस्थान (आई.एस.सी.) बंगलौर, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) कानपुर, चेन्नई, मुम्बई, खड़कपुर, रुड़की, राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला पुणे, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेंटल रिसर्च तथा भाभा एटामिक रिसर्च सेन्टर, मुम्बई, रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.) हैदराबाद, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी आदि जैसे महत्वपूर्ण संस्थानों/विश्वविद्यालयों में शोधकार्य चल रहे हैं।

विश्व के वैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों के बीच चर्चित नैनो टेक्नोलॉजी आधुनिक विकास का ताज धारण करने के साथ-साथ विवादास्पद भी होती जा रही है। ऐसा कोई भी देश नहीं जहाँ नैनो टेक्नोलॉजी संबंधित शोधकार्य न हो रहे हों। सन् 1970 में तीन वैज्ञानिकों मैक डायरमिड, एलेनेहीगर और हिदेकी शिराकावा ने बहुलकों की आणविक संरचना में परिवर्तन करके उनमें विद्युत प्रवाहित करने में सफलता पाई। वैज्ञानिकों ने
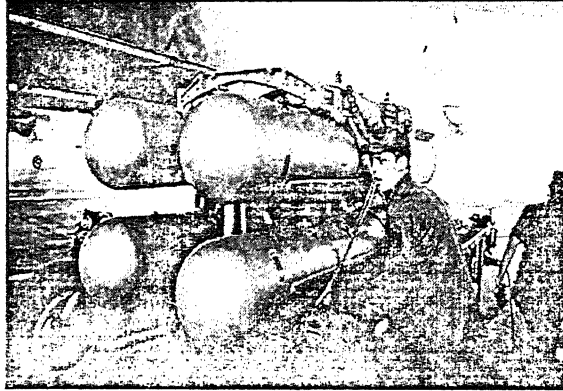
कुचालक प्लास्टिक में विद्युत प्रवाहित कर विज्ञान में एक नये परिवर्तन को जन्म दिया। इस चमत्कारिक कार्य के लिए इन वैज्ञानिकों को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यही मौलिक अनुसंधान आज नैनो टेक्नोलॉजी की आधारशिला बनी है। तकरीबन पचीस वर्ष पूर्व नाभिकीय आयुधों की प्रयोगशाला में माइक्रोमेकैनिकल अभियांत्रिकी और माइोइलेक्ट्रोमेकेनिकल तंत्रों के विभिन्न नामों के साथ नैनो टेक्नोलॉजी के आयाम बढ़ते गए। आणविक स्तर पर पदार्थों में फेरबदल करने से उनकी कार्यक्षमता में विलक्षणता आ जाती है तथा इनकी उपयोगिता के आयाम में सहसा बेतहाशा वृद्धि हो जाती है। जेंस डिफेंस वीकली में नैनो टेक्नोलॉजी पर प्रकाशित एक विशेष रिपोर्ट (द पोटेंशियल फार न्यू वीपेंस ऑफ मास डिस्ट्रक्शन) के मुताबिक नैनो टेक्नोलॉजी की सहायता से नाभिकीय आयुधों के आकार को छोटा करने के साथ साथ उन्हें शक्तिशाली भी बनाया जा सकता है।

प्रथम और द्वितीय पीढ़ी के नाभिकीय अस्त्र परमाणु बम एवं हाइड्रोजन बम थे, जिन्हें 1940 और 1950 के दशकों में निर्मित किया गया। तीसरी पीढ़ी के नाभिकीय अस्त्र न्यूट्रान बम को नए सिद्धान्तों के आधार पर कई दशकों में कठोर परिश्रम द्वारा विकसित किया गया। परन्तु वर्तमान में नैनो टेक्नोलॉजी आधारित नाभिकीय अस्त्रों की चौथी पीढ़ी को विकसित करने में विकसित राष्ट्र अपनी विशेष ऊर्जा लगा रहे हैं। विशेष तौर पर ध्यान दिया जा रहा है कि चौथी पीढ़ी के नाभिकीय अस्त्र ऐसे होने चाहिए कि वे सी.टी.बी.टी. के मानदण्डों एवं प्रावधानों का शतप्रतिशत पालन करें। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि चौथी पीढ़ी के नाभिकीय अस्त्रों का वजन एवं आकार मात्र कुछ किलोग्राम का ही होगा और उसके निर्माण में सुपरलेजर, मैग्नेटिक कंप्रेशन तथा एंटीमैटर जैसी तकनीकी का प्रयोग किया जा रहा है। ऐसे अस्त्रों के निर्माण पर अमेरिका, जर्मनी, जापान एवं कुछ अन्य देशों में तेजी से शोध हो रहा है। क्योंकि विगत युद्धों के आधार पर रक्षा वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यदि अस्त्रों के आकार छोटे कर दिए जाएँ तो इनके प्रयोग काफी आसान एवं प्रभावी हो जाएँगे। उदाहरणार्थ, क्रूज मिसाइलों जैसी कीमती लेजर नियंत्रित मिसाइलों के निर्माण में आने वाले खर्च को काफी कम किया जा सकता है। युद्धों की तकनीक को ध्यान में रखते हुए एक ऐसे 'वारहेड' के निर्माण की आवश्यकता महसूस की गई, जिसकी विध्वंसक क्षमता वर्तमान वारहेड से कई गुना अधिक हो। रक्षा विशेषज्ञों एवं रक्षा वैज्ञानिकों ने एक ऐसे हथियार के निर्माण की योजना बनाई है, जो पृथ्वी की सतह से सैकड़ों मीटर अन्दर घुसकर लक्ष्यों को भेद सकें। स्मरण रहे कि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन सी.आई.ए. के अनुसार ईराक के राष्ट्रपति आवास के नीचे सैकड़ों मीटर की गइराइयों में एक ऐसा विशेष बंकर बना है जिसे अभी तक कोई अस्त्र भेद नहीं सकता। वर्तमान में ऐसे बंकरों को विध्वंस करना अपरिहार्य सा हो गया है। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि नैनो टेक्नोलॉजी द्वारा इस समस्या का समाधान ढूँढा जा सकता है। परिणामस्वरूप, अमेरिका की सैंडिया नेशनल लैबोरेट्री के साथ साथ दुनिया भर की अनेक प्रयोगशालाओं में नैनो टेक्नोलॉजी की सहायता से नाभिकीय हथियारों की चौथी पीढ़ी के अस्त्रों का निर्माण कार्य प्रगति पर है। स्मरण रहे कि चौथी पीढ़ी के नाभिकीय हथियार परम्परागत हथियारों की तुलना में कई गुना लघु, हजारों गुना शक्तिशाली एवं विकिरणरहित होंगे, जो सी.टी.बी.टी. के प्रावधानों का पालन करेंगे। यही कारण है कि इन नाभिकीय अस्त्रों को 'क्लीन न्यूक्लियर वीपंस' कहा जा रहा है। अमेरिका की नेशनल इग्निशन फैसिलिटी (एन.आई.एफ.) एवं फ्रांस के लेजर मेगाजोउले प्रयोगशाला में ऐसे यंत्रों को निर्माण करने का कार्य प्रगति पर है। चौथी पीढ़ी के नाभिकीय अस्त्रों के निर्माण के दौरान वैज्ञानिकों ने अनुभव किया कि नैनो टेक्नोलॉजी की सहायता से माइक्रोफिशन अस्त्र बनाने की तुलना में माइक्रोफ्यूजन अस्त्र बनाना काफी आसान है। इसीलिए इस दिशा में प्रगति का प्रयास काफी संतोषजनक है। यही कारण है कि विश्व की अनेक प्रयोगशालाओं में माइक्रोफ्यूजन आधारित नाभिकीय अस्त्रों को निर्मित किया जा रहा

है। इन हथियारों के निर्माण में परम्परागत रेडियो ऐक्टिव ईंधन का ही प्रयोग किया जा रहा है, परन्तु नैनो अभियांत्रिकी की सहायता से उन्हें अति शुद्ध कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ, अमेरिका की एन.आई.एफ. प्रयोगशाला में नाभिकीय अस्त्रों के लिए दो मिलीमीटर व्यास एवं माइक्रोमीटर मोटाई वाले 'एक्स्ट्रीम प्योर फ्यूल' का प्रयोग किया गया है। अतः इस नाभिकीय अस्त्र में इस फ्यूल के लगभग एक हजार परमाणु प्रयोग किए गए और इस बम के डिटोनेशन के लिए लेजर की सहायता ली गई है। नैनो पदार्थ अभियांत्रिकी की सहायता से नए कैपेसीटर्स, विकिरणरोधी नए परिपथों, उच्चतापीय कम्पोजिट पदार्थों और एक्सेलरेशन का निर्माण करने में सफलता हासिल हुई है। इन आविष्कारों के प्रयोग से न केवल परम्परागत नाभिकीय अस्त्रों के आकार को न्यून करने में सहायता मिलेगी, बल्कि उनके उपयोग और सुरक्षा में भी बेतहाशा वृद्धि होगी। अमेरिका में तोपों द्वारा फेंके जाने वाले नाभिकीय गोलों के निर्माण का कार्य करीब करीब अंतिम चरण में है। नैनो टेक्नोलॉजी द्वारा निर्मित ये गोले विकिरणरहित होने के साथ साथ परम्परागत गोलों की तुलना में अधिक विध्वंसकारी होंगे।

नैनो टेक्नोलॉजी की सहायता से निर्मित 'अर्थ पेनीट्रेटिंग वारहेड' की माँग अमेरिकन मिलिट्री काफी दिनों से कर रही है, जिसका उपयोग भूमिगत लक्ष्यों को विध्वंस करने में किया जाएगा। रक्षा विशेषज्ञों के अनुसार पृथ्वी की सतह पर हुए विस्फोट की मात्र 15 प्रतिशत ऊर्जा ही धरती पर अपना प्रभाव छोड़ पाती है। पृथ्वी की सतह पर एक मेगाटन बम के विस्फोट द्वारा पृथ्वी के भीतर सतह से कुछ मीटर नीचे स्थित लक्ष्य को ध्वस्त नहीं कर पाते। स्मरण रहे कि मिसाइलें भी पृथ्वी से टकराने के बाद मुश्किल से दस–बारह मीटर अंदर तक ही प्रभावित कर पाती हैं। इसीलिए ऐसे वारहेड की जरूरत महसूस की जा रही है, जो पृथ्वी के अंदर सैकड़ों मीटर धँसने के बाद विस्फोट करें। आशा है कि नैनो टेक्नोलॉजी इसमें काफी कारगर सिद्ध होगी। नैनो टेक्नोलॉजी की मदद से बेहद हल्के एवं मजबूत पदार्थों, कम्प्यूटरों, वैज्ञानिक उपकरणों, संवेदकों, रोबोट्स का निर्माण किया जा रहा है। नैनो टेक्नोलॉजी की मदद से अनेक संवेदकों तथा अन्वेषियों को विकसित किया जा रहा है, जिनसे विषैली गैसों एवं जैवीय अस्त्र जैसे– एंथ्रैक्स आदि को सुगमतापूर्वक पहचानने में मदद मिलेगी।

ख्यातिलब्ध वैज्ञानिक ज्वाय के विचारों ने नैनो टेक्नोलॉजी पर कार्यरत अनेक शोधकर्ताओं को गंभीरता भरी रणनीतियों को अपनाने की कवायद की। ज्वाय के पहले भी अनेक तत्वदर्शी नैनो टेक्नोलॉजी पर सरकारी नियंत्रण की आवश्यकता जता चुके हैं। उदाहरणार्थ, अमेरिका स्थित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ ने डी.एन.ए. टेक्नोलॉजी पर हो रहे अनुसंधान को विशेष दिशा निर्देश देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा कि जाने अनजाने में जैव प्रौद्योगिकी द्वारा किसी ऐसे जीवाणु को विस्तार न दिया जाए जो जीव मात्र के लिए खतरनाक हो सकते हैं। ज्वाय और उनके सहयोगियों को भय था कि यदि आणविक आकृति वाले नैनो इलेक्ट्रानिक युक्तियों में स्वयं प्रतिकृति जैसी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाएगी तो समूची परिस्थितियाँ विषमता में फँस सकती हैं। वैज्ञानिकों को इस बात का विश्वास है कि आणविक युक्तियों को बनाया तो जा सकता है, परन्तु ये स्वयं निर्मित नहीं होंगी क्योंकि प्रकृति ने भी ऐसा कार्य नहीं किया है। नैनो आकार के वायरस को भी अपनी प्रतिलिपि तैयार करने के लिए अन्य जैविक घटकों की मदद लेनी पड़ती है। नोबेल पुरस्कार विजेता रसायनज्ञ रिचर्ड्स स्माली ने इस बात की पुष्टि की कि ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि आणविक नैनो युक्तियों को संचालित करने के लिए किसी न किसी वाह्य नियंत्रक की आवश्यकता पड़ेगी। ज्वाय की परिकल्पना एवं स्माली की वास्तविकता के बीच नैनो अनुसंधान के भविष्य पर अनेक प्रश्नचिन्ह लग रहे हैं। संभव और असंभव के बीच की खाइयों को पाटना ही विज्ञान का सबसे बड़ा दायित्व रहा है। इसी क्रम में नैनो टेक्नोलॉजी आने वाली दुनिया के लिए वरदान होगी या अभिशाप ? इसकी परिस्पंदित अरुणिमा की आभा, शतप्रतिशत मानवीय चेतना पर निर्भर करेगी।

नैनो टेक्नोलॉजी विशेषज्ञ सीनहावर्ड ने चेतावनी

दी है कि यदि नरसंहारक अस्त्रों के निर्माण में नैनो टेक्नोलॉजी के बढ़ते प्रयोग को नियंत्रित नहीं किया गया तो विश्वशांति विनाश की काली छाया से घिर जाएगी। उन्होंने अपील की कि विश्वशांति के लिए प्रयत्नशील सभी संगठनों को एकत्रित होकर अंतर्राष्ट्रीय संधि के तहत एक ऐसा दस्तावेज तैयार करना चाहिए, जिसके प्रयोग द्वारा नैनो टेक्नोलॉजी के बढ़ते दुरुपयोगी कदम को रोका जा सके क्योंकि अवांछनीय तत्व इस समृद्धिशाली टेक्नोलॉजी को पाते ही मनवांछित महाविनाश का जलजला ला देंगे।

सन् 1986 में सिद्धान्तविद के. इरिक डेक्सलर ने अपनी पुस्तक 'इंजन आफ क्रिएशन' में आने वाले नैनो टेक्नोलॉजी पर भविष्यवाणी करते हुए कहा कि नैनो टेक्नोलॉजी की ओजस्वितापूर्ण कल्पना शक्ति से सतर्क रहना होगा क्योंकि इससे उत्पन्न विभीषिका को नियंत्रित कर पाना असंभव सा होगा। ज्वाय ने अपने वैज्ञानिक मित्रों को सलाह दी कि ड्रेक्सेलर की 'नैनो गूँज' वाली नकारात्मक भविष्यवाणी को ध्यान में रखते हुए इसके दुरुपयोग प्रारम्भ में ही खारिज कर दें, क्योंकि उससे शांति भंग होने की पूरी संभावना है।

उच्चानुशीलन केन्द्र
रसायन एवं अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विभाग
प्रौद्योगिक संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

पृष्ठ 7 का शेष ....

पुत्रोहं पृथिव्याः' को ठीक से जिया।

हमारे मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय डॉ0 मुरली मनोहर जोशी जी ने विश्व मंच पर अपने उद्बोधन में कहा, *पोषणक्षम उपभोग के प्रति हमारी चिन्ता एवं इसका पक्षपोषण इसलिए है कि हम अन्तरिक्ष, समुद्र, हिमनदियों व नहरों जैसे जलस्रोतों, वनक्षेत्रों, वनस्पतियों का संरक्षण कर सकें और सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि हम मानवजाति के बड़े भाग की मानवीय गरिमा की रक्षा कर सकें क्योंकि अपोषणक्षम उपभोग की वर्तमान स्थिति जारी रही तो मानवजाति का बड़ा भाग ईश्वरप्रदत्त वायु व जल के निःशुल्क उपहारों से भी वंचित हो जाएगा।'* पढ़कर मुझे लगा कि हमारा यह मनीषी ईशावास्योपनिषद का पुनर्घोष कर रहा है–

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।।'

और पश्चिम के भोगवाद जनित प्रदूषण से आक्रान्त मानवता को भारतीय जीवन दर्शन का पाठ पढ़ा रहा है। यजुर्वेद के इस मंत्र में जिसे मंगलकारी वैज्ञानिक चेतना के दर्शन होते हैं, वही सच्चा वैज्ञानिक है। हम पर ईश्वर की असीम अनुकम्पा है कि आज इस राष्ट्र का शीर्ष पुरुष ऐसी ही मंगलकारी वैज्ञानिक चेतना का पोषक है और हमारे विज्ञान परिषद् के तो कण कण से निरंतर ऐसी ही वैज्ञानिक चेतना के स्वर प्रस्फुटित होते रहते हैं।

आज इस मंच से मैं उन सभी महान विभूतियों को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ जिन्होंने इस गौरवमयी संस्था की नींव डाली और आज हमारे बीच नहीं हैं और उनके प्रति भी श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने इस अमृत बेलि को अपने पसीने से सींचा है और आज हमारे बीच नहीं हैं। साथ ही मैं उन मनीषियों को भी प्रणाम अर्पित करता हूँ जिन्होंने अपना सर्वस्व इस संस्था को अर्पण कर रखा है और हमारे श्रद्धेय आदर्श बनकर आज हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। आप सभी को पुनः अपना प्रणाम अर्पित करते हुए मैं अपनी बात पूरी करता हूँ।

जय हिन्दी, जय नागरी
जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान

अध्यक्ष
उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग
इलाहाबाद

भोजन जनित रोग

डॉ0 जे.एल. अग्रवाल

रोटी, कपड़ा, मकान जीवन की मूल जरूरतें हैं। पर्याप्त मात्रा में सन्तुलित स्वच्छ भोजन का सेवन करने से ही मनुष्य स्वस्थ, सक्रिय, निरोगी रह सकते हैं। पर असावधानी, लापरवाही के कारण भोजन, पेय के संक्रमित प्रदूषित होने का भय रहता है। आधुनिक समय में मनुष्य की गलत आदतों, रसायन के उपयोग, इत्यादि कारणों से भोजन से होने वाले रोगों का भय बढ़ रहा है। संक्रमित या भोज्य पदार्थों में प्राकृतिक रूप से या बाद में पहुँच गए हानिकारक तत्वों के सेवन से भोजनजनित रोग हो सकते हैं। भोज्य पदार्थ पेय पदार्थ इकट्ठा करने, वितरण, पकाने, परोसने, खाने के समय प्रदूषित, संक्रमित हो सकते हैं।

कैसे हो सकते हैं भोजन संक्रमित प्रदूषित

◆ भोजन, पेय को गलत ढंग से जमा किया जाता है। यदि भोज्य पदार्थों के वितरण पकाने, परोसने खाते समय स्वच्छ, स्वस्थ, सुरक्षित तरीकों का इस्तेमाल नहीं किया जाता है।

◆ यदि भोजन पकाने या खाने से पूर्व मलमूत्र त्याग के बाद हाथ नहीं साफ किए जाते।

◆ यदि भोज्य पदार्थ विशेष कर अंडे, गोश्त, चिकन, दुग्ध उत्पादन, सब्जियों, फलों को सही ढंग से नहीं रखा जाता है।

◆ यदि पकाने के बाद भोजन को सामान्य तापमान में खुला रखा जाता है तो भोजन धूल, मक्खी, मच्छर, चूहों, काकरोच द्वारा प्रदूषित किया जा सकता है।

◆ यदि भोजन पकाते समय या बाद में इस पर छींकते, खाँसते हैं, नाक छिनकते हैं।

◆ यदि प्रदूषित पके या कच्चे भोजन को स्वच्छ भोजन से मिला दिया जाता है।

◆ यदि भोजन पकाने, परोसने वाले रोगग्रस्त हैं।

◆ भोजन को सुरक्षित रखने, रंगने, आकर्षक, स्वाद बढ़ाने के लिए प्रयुक्त रसायन भोजन में मौजूद कीटनाशक रसायन भी संक्रमण का कारण हो सकते हैं।

◆ कुछ भोज्य पदार्थों में प्राकृतिक रूप से ही हानिकारक तत्व मौजूद होते हैं।
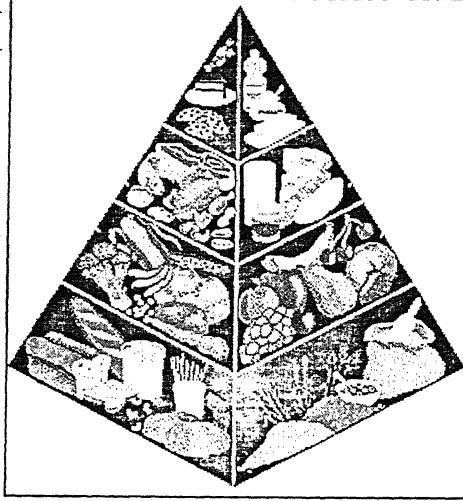
भोजनजनित समस्याएँ

यदि भोजन रखते, वितरण करते, पकाते, परोसते, खाते समय जीवाणुओं से प्रदूषित हो गये हैं तो टायफाइड, दस्त, पेचिश, कालरा आदि रोग हो सकते हैं।

भोजन के वायरस प्रदूषित होने से वायरल हिपेटाइटिस (पीलिया), गैस्ट्रोइन्ट्राइटिस इत्यादि रोग हो सकते हैं।

परजीवी से संक्रमित होने पर अमीबिएसिस, रीनिमेसिस इत्यादि रोग हो सकते हैं।

भोजन के फफूँद संक्रमण से भी अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

अनाजों, चावल, मक्का, बाजरा, गेहूँ, कपास, शक्करकंद को इकट्ठा करने से इनको फफूँद संक्रमित

कर सकते हैं जो कि एफ्लोटाक्सिन स्रावित करते हैं। यह जहर लिवर को क्षतिग्रस्त कर लिवर कैंसर, सिरोसिस का कारण हो सकता है।

बाजरा, राई, ज्वार, गेहूँ इत्यादि की फसलों में भी फफूँद से संक्रमण हो सकता है। बीज काले पड़ जाते हैं। इनके सेवन से मितली, उलटी, दस्त, पेट दर्द, चक्कर आने की समस्या हो सकता है।

अरहर के सदृश्य दिखने वाली खेसरी दाल गरीब व्यक्ति सेवन कर सकते हैं या अरहर दाल में मिलावट खेसरी दाल से हो सकता है। इसमें मौजूद जहरीला तत्व बी.ओ.ए. मस्तिष्क, स्नायु को क्षतिग्रस्त कर लकवा कर अपाहिज कर सकते हैं।

देश के कुछ इलाकों में गरीब व्यक्ति गौडू (झुनझुनिया) का सेवन करते हैं जिसमें मौजूद जहरीले तत्व के कारण पेट में पानी भरने की समस्या हो सकती है।

सरसों के तेल की सत्यानाशी (आरजिमोन) के तेलों से जाने–अनजाने मिलावट हो सकती है। सुरक्षित सीमा से अधिक सेवन से मरीजों के दोनों पैरों में अचानक सूजन आ जाती है। दस्त, श्वाँस फूलने की समस्या हो सकती है। हार्ट फेलेयर के कारण मृत्यु हो सकती है या फिर बाद में ग्लोकोमा के कारण मरीज अंधा हो सकता है।

कुछ भोज्य पदार्थ, जैसे गोभी प्रजाति की सब्जियों के सेवन से कुछ व्यक्तियों में थॉयराइड ग्रंथि की वृद्धि के कारण घेंघा रोग हो सकता है। क्योंकि इनमें कुछ ग्वायटोरोजेनिक तत्व मौजूद होते हैं।

यदि भोजन संक्रमित जानवर से प्राप्त होता है तो दूध, अंडा, गोश्त, चिकन, मछली के सेवन से बीमारी हो सकती है।

इसी तरह यदि पशु, कीटनाशक, रासायनिक उर्वरक मिले चारे का सेवन करते हैं तो यह रासायनिक तत्व इसके उत्पादन में मौजूद होते हैं और इनके सेवन से मनुष्य के शरीर में भी पहुँच कर ग्रसित हो सकते हैं।

यदि जल प्रदूषित है तो इस जल में पलने, बढ़ने वाली मछलियां भी संक्रमित हो सकती हैं या फिर पानी में मौजूद रसायन, धातुएँ, मछलियाँ एवं अन्य समुद्री उत्पादन में जमा हो जाती हैं, जिनके सेवन से मनुष्य भी रोगग्रस्त हो सकते हैं।

खाद्यान्न, फलों, सब्जियों को सुरखित रखते समय कीटनाशक रसायन का उपयोग किया जाता है। गलत तरीके, लापरवाही के कारण यह रसायन भी भोजन में मिलकर मनुष्य को बीमार कर सकते हैं।

जहरीले मशरूम या अन्य जहरीले फल– धतूरा, बेरी इत्यादि का सेवन असावधानीवश करने से बीमार हो सकते हैं या मृत्यु हो सकती है।

भोजन को सुगन्धित करने, आकर्षक बनाने, सुरक्षित रखने के लिए अनेक तत्वों, रसायनों का उपयोग होता है। इनमें प्राकृतिक पदार्थ– केसर, हल्दी, वनीला, सिरका के अतिरिक्त रसायन का उपयोग होता है। ये रसायन अब वैज्ञानिकों के शक के दायरे में आ गए हैं, जिसके सेवन से मनुष्य रोगग्रस्त हो सकते हैं।

भोजन को पैक करने के लिए प्रयुक्त सामान में मौजूद तत्व भी भोजन में पहुँच कर भोजन को प्रदूषित, संक्रमित कर सकते हैं।

जानवरों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए उनको स्टेरायड हार्मोन का तथा दुधारू पशुओं को दूध बढ़ाने के लिए आक्सीटोसिन का इंजेक्शन दिया जाता है। इन जानवरों के उत्पादन, गोश्त, चिकन, अंडों, दूध, दुग्ध उत्पादन में इनका स्तर ज्यादा हो जाता है, जिसके दुष्प्रभाव का अध्ययन वैज्ञानिक कर रहे हैं।

इसी प्रकार जानवरों को रोगग्रस्त होने पर यह इनको रोगों से बचाव के लिए एण्टीबायोटिक दवाओं का इस्तेमाल भी किया जाता है जिसके कारण इन जानवरों के शरीर में मौजूद जीवाणु इन दवाओं के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न कर लेते हैं और यह जीवाणु मनुष्य के शरीर में पहुँच कर रोगग्रस्त कर सकते हैं।

कुछ व्यक्तियों में किसी विशिष्ट भोज्य पदार्थ से एलर्जी होने की संभावना रहती है। मछली, झींगा, अंडे, स्ट्राबेरी, दूध इत्यादि भोज्य पदार्थों से एलर्जी होने की ज्यादा संभावना रहती है। वैसे करीब 20 प्रतिशत व्यक्ति भोज्य पदार्थों से एलर्जी की शिकायत करते हैं पर सिर्फ एक–दो प्रतिशत व्यक्ति ही असलियत में विभिन्न भोज्य तत्वों से एलर्जीग्रस्त पाए गए हैं। एलर्जी होने पर पित्ती, दमा, एक्जिमा, मितली, उल्टी, दस्त, पेटदर्द हो सकता है। कभी कभी भोज्य पदार्थ से एलर्जी के कारण एनाफिलेक्सिस होने से मौत होने का

डर भी रहता है।

भोजन से होने वाली बीमारियों से कैसे बचें

भोजन के सेवन से अनेक रोगों का भय रहता है। देश में उत्पादन से लेकर सेवन तक की यात्रा में सावधानी न रखने, स्वच्छता के अभाव, अज्ञानता, अशिक्षा के कारण भोजनजनित रोगों के ग्रसित होने का डर अत्यधिक रहता है।

फसलों के उत्पादन के लिए कीटनाशक रसायनों का उपयोग अवश्य किया जाना चाहिए पर सही मात्रा और निर्देशानुसार ही।

भोजन को गोदामों में सही तापमान, स्वच्छ स्थान और अच्छी तरह बंद कर रखना चाहिए जिससे खाद्यान्न या अन्य भोज्य तत्व प्रदूषित, संक्रमित न हो पाए। इनके वितरण की व्यवस्था भी सही तरीके से होनी चाहिए। दूध या अन्य जल्दी खराब होने वाले भोजन को ठंडे वाहनों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना चाहिए।

भोज्य पदार्थ सदैव अच्छी गुणवत्ता का खरीदें। सड़े गले भोज्य पदार्थ, खाद्यान्न, फल, सब्जियों, मिठाइयों को न खरीदें। इनको नष्ट कर देना चाहिए। साथ ही सुनिश्चित करें कि भोजन में मिलावट तो नहीं है।

छोटे बच्चों को खुले पार्क, बागों में अकेले न खेलने दें, यहाँ पर वे जहरीले फल, फूल, पत्तियों का सेवन कर सकते हैं।

दूध, चिकन, गोश्त, अंडे, मछली स्वस्थ जानवरों से होना चाहिए। वध से पूर्व पशुओं की जाँच आवश्यक है, रोगग्रस्त पशुओं को नष्ट कर देना चाहिए।

फल, सब्जियों, सलाद का कच्चा सेवन करने से पूर्व इनको बहते स्वच्छ पानी से अच्छी तरह धोकर ही इस्तेमाल करें। यदि संक्रमित होने का भय है तो पका कर इस्तेमाल करें।

गोश्त, अंडों, चिकन का भी सेवन कच्चा न करें। सदैव अच्छी तरह पका कर करें। दूध को भी सदैव उबाल कर या पाश्चुराइज प्रयोग करें। इसी दूध से दुग्ध उत्पाद तैयार करना चाहिए।

भोजन को चूहों, काकरोच से बचाएँ। धूल, मच्छर, मक्खियों से प्रदूषित न होने दें।

भोजन पकाने का स्थान स्वच्छ होना चाहिए। किचन गंदगी, कूड़ा करकट, नाले, नाली, पशु के रहने के स्थान से निकट नहीं स्थित होना चाहिए।

भोजन पकाने वाले, परोसने वाले व्यक्ति स्वस्थ होने चाहिए। फोड़ा, फुंसी, दस्त, पेचिश, बुखार, खाँसी ग्रस्त होने पर भोजन पकाने, परोसने का कार्य न करें जब कि स्वस्थ न हो जाएँ।

भोजन पकाने, परोसने के पूर्व हाथ साबुन से साफ करें, सर न खुजायें, मुँह, नाक, मुँह के आसपास अंगुलियाँ हाथ न छुआयें। खाँसें, छींकें, थूकें नहीं।

भोजन पकाते समय स्वच्छ कपड़े पहनें, यदि वाल लम्बे हैं तो बाँध लें। नाखून छोटे रखें।

भोजन पकाते, परोसते समय कम से कम हाथ से छुयें।

भोजन पकाने, पीने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला जल स्वच्छ होना चाहिए।

बेहतर होगा कि ताजा पका गर्म भोजन का सेवन करें। बचे भोजन को फ्रिज में जब गर्म है तभी रखें। ठंडे होने का इंतजार न करें। भोजन को सामान्य तापमान पर यदि 4 घंटे से ज्यादा रखा गया है तो सेवन न करें। फ्रिज से निकालने के बाद भोजन को अच्छी तरह गर्म करके ही उपयोग में लायें।

डिब्बाबंद भोज्य पदार्थ का यदि डिब्बा फूल गया है डिब्बा खोलने पर झाग निकलता है तो उपयोग न करें, नष्ट कर दें।

भोजन पकाने, परोसने, खाने के बर्तन स्वच्छ होने चाहिए। बर्तनों को मिट्टी से साफ न करें।

भोजन सेवन करने का स्थान स्वच्छ होना चाहिए। हाथ साफ करके ही भोजन करें।

भोजन में 'पोषक तत्वों' के अतिरिक्त अनेक अन्य तत्व मौजूद होते हैं, इसके अतिरिक्त भोजन के उत्पादन वितरण, रखने, पकाने, खाने में असावधानी के कारण भोज्य पदार्थ, भोजन प्रदूषित, संक्रमित हो सकता है। यदि सही तरीके से भोजन का चुनाव किया जाता, पकाया जाता है तो अनेक बीमारियों से बचाव संभव है। भोजन जनित बीमारियाँ देश के सामने विकट समस्या के रूप में हैं, किन्तु यदि पर्याप्त सावधानी बरती जाय तो बचाव संभव है।

मेडिकल कालेज,
कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) 176001

जैव प्रौद्योगिकी

क्या होते हैं ट्रांसजीनी पौधे ?

अनूप कुमार

प्रकृति स्वयं जीवों का स्थानान्तरण अरबों खरबों वर्षों से करते हुए नई जातियों, नई प्रजातियों तथा वनस्पति एवं जन्तु–जगत के नए गुणों का उद्भव सदैव से करती रही है। इसके पीछे मूल ज्ञान यह है कि प्रत्येक जैव तन्त्र के गुण तथा उसमें समाहित क्रिया जीन के द्वारा निर्धारित होती है। जीन का आधारभूत रासायनिक अणु डी.एन.ए. (डिआक्सीराइबोसन्यूक्लीक अम्ल) होता है। इन डी.एन.ए. अणुओं में परिवर्तन के माध्यम से गुण भी परिवर्तित किए जा सकते हैं।

किसी एक पौधे के इच्छित (ऐच्छिक) गुण का जीन किसी दूसरे पौधे के जैव तन्त्र में स्थानान्तरित किया जाता है। इन पौधों को ट्रांसजीनी पौधे कहते हैं।

अब तक जीन स्थानान्तरण का जो कार्य प्रकृति कर रही थी, अब मानव भी कर सकता है। परन्तु प्रकृति द्वारा किए जा रहे जीन स्थानान्तरण से इसमें दो मूलभूत भिन्नताएँ हैं। सर्वप्रथम प्राकृतिक जीन स्थानान्तरण एक अत्यन्त धीमी प्रक्रिया है जो आधारभूत आवश्यकताओं के अनुसार तथा अनेक बार जिजीविषा एवं पारिस्थितिकीय निर्देशों के अनुसार होती रही। दूसरे प्राकृतिक जीन स्थानान्तरण में जीन अपने युग्मों, समूहों में स्थानान्तरित होते रहते हैं।

परंतु जब वैज्ञानिकों ने ऐसा करने का निश्चय किया तो उन्होंने पहले ऐसे गुणों का निर्धारण करते हुए जीन का अध्ययन किया तथा उसके बाद ऐसी तकनीक विकसित की जिनसे ऐसे गुण समान पादप प्रजातियों में डाले जा सकते थे। ऐसी तकनीक मूलतः पादप प्रजनन (प्लांट ब्रीडिंग) पर आधारित थी। यह उपलब्धि कुछ समस्याओं से ग्रसित थी। सर्वप्रथम यह बहुत अधिक समय लेने वाली तथा दूसरे यह वनस्पति जगत की समान अथवा काफी निकट प्रजातियों के मध्य में ही जीन स्थानान्तरण तक ही परिसीमित थी। परन्तु पुनर्योगज (रिकाम्बिनेन्ट) डी.एन.ए. तकनीक के पिछले कुछ दशकों के विकास ने इन समस्याओं को पार करते हुए आधुनिक जीवाणुओं के जगत से भी गुण एवं जीन के स्थानान्तरण का एक समर्थ, त्वरित एवं आवश्यकताओं पर आधारित तन्त्र प्रस्तुत किया है। ऐसे स्थानान्तरित जीन गुण से युक्त पौधों को ट्रांसजीनी पौधे कहते हैं।

इस विधि के द्वारा विकसित ट्रांसजीनी पौधे को टेस्ट ट्यूब में विकसित करके खेतों में स्थानान्तरित किया जा सकता है। ऐसे पौधे विकसित किए जा रहे हैं जिनमें अरुग्णता एवं स्वाद, सड़नरहित एवं अनेक अन्य गुण हों।

रिकाम्बिनेन्ट डी.एन.ए. तकनीक

किन्हीं दो स्रोतों से प्राप्त डी.एन.ए. अणुओं के कुछ विशेष परिस्थितियों में

समायोजन से एक नए डी.एन.ए. अणु का निर्माण किया जा सकता है जैव इन्जीनियर को इस तकनीक का प्रयोग करने से पूर्व इस बात का निर्धारण करना आवश्यक है कि रिकाम्बिनेन्ट डी.एन.ए. अणु कारक हो तथा उसके गुणों/जीन द्वारा प्रोटीन का निर्माण हो। एक ट्रांसजीनी पौधे के विकास का क्रम निम्नलिखित रूप से चरणबद्ध है।

अ. जीन पृथक्कीकरण : इस क्रिया में यह जानना अति आवश्यक है कि हमारे कार्य हेतु कौन सा गुणसूत्र अथवा जीन सर्वाधिक लाभदायक है तथा सम्पूर्ण गुणसूत्रों में यह कहाँ पर स्थित है।

ब. क्लोनिंग : मनचाहे गुणसूत्र व जीन को पहचानने के बाद उस जीन को कैंचियों (बायलोजिकल सिजर्स)/(रिस्ट्रिक्शन एंजाइम्स) की सहायता से काट कर निकाला जा सकता है। प्रतिबिम्बित डी.एन.ए. का निर्माण भी किया जा सकता है।

स. वेक्टर : जीन को निकालने के पश्चात् उसे वेक्टर से जोड़ा या युग्मित किया जाता है। वेक्टर स्वयं डी.एन.ए. अणु होते हैं। ये बैक्टीरिया/अथवा विषाणु से प्राप्त होते हैं तथा गुणवाहक का कार्य करते हैं। इन गुणवाहकों में कुछ चिन्हक गुण (मार्कर) गुण होते हैं। जिन्हें रिकाम्बिनेशन के बाद पहचाना जा सकता है।

ट्रान्सफार्मेशन (रूपांतरण)

गुण वाहक को पहले एग्रोबैक्टीरियम तथा उसके बाद पौधों में स्थानान्तरित किया जाता है। एक अन्य विधि के द्वारा पादप ऊतक पर ऐसे कणों की तेज गति से बौछार कण बंदूक से की जाती है। गुणवाहक डी.एन.ए. इस प्रकार पादप कोशिकाओं तक पहुँच जाते हैं तथा जीनोम में समाहित हो जाते हैं।

ऊतक संवर्धन

रूपांतरित ऊतक को विभिन्न पोषी माध्यमों के द्वारा परखनली में परिपूर्ण पौधे में विकसित करते हैं। इस क्रिया को ऊतक संवर्धन कहते हैं। इन पौधों को विभिन्न तुलनात्मक परीक्षणों से गुजारते हैं तथा जो पौधे रूपांतरित नहीं हुए हैं उन्हें ट्रांसफार्म पौधों से अलग कर दिया जाता है।

परीक्षण

ट्रांसजीनी पौधों का निरीक्षण अनेक पीढ़ियों तक किया जाता है जिससे ऐच्छिक गुण आनुवंशिक पृथकीकरण के समय अथवा बाद की परिस्थितियों में निर्धारित गुण का प्रदर्शन निरन्तर करते रहें।

ट्रांसजीनी पौधों का लाभ

विभिन्न रोगों के कारण फसलों का महत्वपूर्ण अंश नष्ट हो जाता है। ऐसे रोगों को नियंत्रित करने के लिए जीन इंजीनियरिंग की तकनीक का सफलतापूर्वक विकास किया गया है।

ट्रांसजीनी पौधों की तकनीक का विकास अन्य क्षेत्रों में करने के सतत् प्रयास किए जा रहे हैं। यह तकनीक न केवल पारिस्थितिकीय सिद्धान्तों के अनुरूप है बल्कि ऐसे कीटनाशियों एवं रसायनों पर होने वाले व्यय को कम करती है जो न केवल विषैले हैं अपितु चक्रीय रूप से प्रयोग होते हैं। यह बिना किसी अतिरिक्त व्यय के गुणात्मक फसलों तथा अन्य पादपों का उत्पादन सुनिश्चित करती है।

कीट प्रतिरोधकता

खाद्य फसलों का महत्वपूर्ण अंश विभिन्न प्रकार के कीट पतंगों द्वारा नष्ट होता रहता है। जैव वैज्ञानिकों ने आज कुछ ऐसे प्रोटीन खोजे हैं जो जीवाणु अथवा पौधों से मिलते हैं। ऐसे प्रोटीन आदि प्रचुर मात्रा में उत्पन्न किए जा सकें तो वे कीट को प्रतिरोधी क्षमता प्रदान कर सकते हैं।

पोषक तत्वों में गुणात्मक सुधार

रिकाम्बिनेन्ट डी.एन.ए. तकनीक द्वारा विभिन्न प्रकार के अन्नों में वांछित पोषक तत्वों के समायेजन द्वारा गुणात्मक सुधार लाया जा सकता है।

बायोवैक्सीन अथवा जैवीय प्रतिरोधक टीके

विभिन्न प्रकार के प्रतिरोधकता उत्पन्न करने वाले अणुओं का विकास पौधों के कच्चे खाने वाले अंश जैसे कि फल इत्यादि में किया जा सकता है तथा ये फल चिकित्सीय प्रकार से दिए गए प्रतिरोधक टीके के प्रभाव को प्रतिबिम्बित करते हैं।

केन्द्रीय औषधि एवं सगंध पौधा संस्थान
लखनऊ-226015

ये घातक कृषि रसायन

रमेश सिंह

मनुष्य का जीवन इस धरती पर अन्य जीवों के परस्पर सामंजस्य पर निर्भर है। आज विज्ञान की प्रगति के कारण प्रकृति का दोहन इतना अधिक बढ़ गया है कि वह प्रत्येक क्षेत्र में अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने की होड़ में लगा है। कृषि क्षेत्र में भी अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरकों व जीवनाशकों का प्रयोग अधिक से अधिक किया जा रहा है, जिससे कृषि उत्पादन तो बढ़ा है परन्तु इसके साथ ही साथ कृषि का पारिस्थतिकीय तंत्र भी तेजी से नष्ट हो रहा है और पर्यावरण प्रदूषण की भयानक समस्या हमारे सामने उठ खड़ी हुई है, जिससे कृषि का विकास टिकाऊ ढंग से न होकर विकृत ढंग से हो रहा है।

कृषि पारिस्थतिकीय तंत्र में फसलों को हानि पहुँचाने वाले मित्र जीव (Defenders) भी पाए जाते हैं। ये मित्रजीव माँसाहारी होते हैं और अपना जीवन चक्र फसलों को हानि पहुँचाने वाले नाशीजीवों पर पूरा करते हैं अर्थात ये नाशीजीवों से फसलों को प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करते हैं। इन प्राकृतिक नियंत्रकों (Natural Enemies) की विभिन्न प्रजातियों की कृषि पारिस्थितिकीय तंत्र में बहुतायत पायी जाती है जिनमें कुछ मुख्य हैं, स्पाइडर, लेडीबर्ड बीटल, आफिनिया पिडेरस, ट्राइकोग्रामा, ग्रियान, डेमसेलफ्लाई, ड्रैगनफ्लाई, कैरोप्स, टेलोनोमस, टेट्रासाइकस, एनाग्रस, गानेटोरस, मिडो ग्रासहापर, क्रिकेट, एपैन्टिलिस, स्टेनोब्रेकान, क्राइसोपाइला, सिरफिडफ्लाई, कैम्पोलिटिस क्लोरिडी, किलोनस, जैन्थोपिम्पिला, टेक्निडफ्लाई, मिरिडबग, वाटरबग, वाटर स्ट्राईडर, बिवरिया बैसियाना, मिट्रीजियम, इन्टोपथोरा, हिरसूटेला सिटरफारमिज आदि। इसके अलावा जो फसलों में लगने वाले रोगकारकों का नाश करते हैं और जैव उर्वरक का भी कार्य करते हैं उनमें
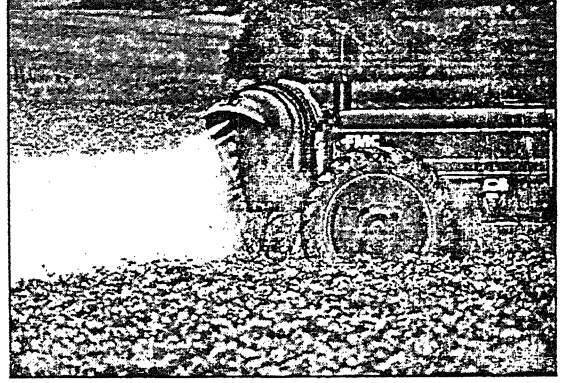
मुख्य प्रजातियाँ हैं ट्राइकोडरमा, ग्लाइवोक्लाडियन, बैसिलस और माइकोराइजी आदि। उपरोक्त सभी मित्र जीव प्राकृतिक रूप से नाशीजीवों का स्वतः ही नियंत्रण करते रहते हैं अतः इन मित्र जीवों को संरक्षण प्रदान करना अति आवश्यक है।

कृषकों द्वारा नाशीजीवों के नियंत्रण हेतु कृषि रसायनों (जीवनाशकों) का अंधाधुंध प्रयोग फसलों पर किया जा रहा है, जिससे फसलों को नुकसान पहुँचाने वाले नाशीजीवों के साथ ही साथ मित्र जीव भी प्रभावित हो रहे हैं और फसल पारिस्थितिकीय तंत्र में इनकी संख्या दिन–प्रतिदिन घटती जा रही है। रसायनों के लगातार प्रयोग से नाशीजीवों में रसायनों के प्रति सहनशीलता भी उत्पन्न हो रही है साथ ही साथ फसल के मित्र जीवों की संख्या कम होने से उनका प्राकृतिक नियंत्रण भी समाप्त होता जा रहा है जिससे नाशीजीवों की संख्या में तेजी से वृद्धि होती जा रही है और इनके नियंत्रण हेतु रसायनों की अधिक मात्रा का इस्तेमाल करना पड़ रहा है। आन्ध्रप्रदेश राज्य के कपास उगाने वाले कृषकों को इसी कारण से अधिक लागत लगानी

पड़ रही है और यथोचित उत्पादन न मिलने के कारण वे आत्महत्या तक कर रहे हैं।

प्राकृतिक संतुलन बिगड़ने के अलावा रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग के कारण पर्यावरण प्रदूषण व जनस्वास्थ्य पर कुप्रभाव आदि की समस्याएँ दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। इसका कारण यह है कि कृषक रसायनों के प्रयोग के बाद– वांछित समय तक इनके अवशेष के पूर्ण रूप से समाप्त होने तक की प्रतीक्षा नहीं करता है। फलस्वरूप यह अवशेष अन्ततोगत्वा भोजन शृंखला के माध्यम से मानव शरीर में पहुँच रहा है, जिसके कारण मानव जीवन कैंसर, हृदय रोग, रोग रोधान क्षमता का ह्रास, उच्च रक्तचाप, मानसिक दुर्बलता, मधुमेह, नपुंसकता, बाँझपन आदि तरह तरह की गम्भीर बीमारियों का शिकार हो रहा है। यह अवशेष पानी, दूध, अण्डों, माँस, मछली, फल, सब्जी व खाद्यान्नों आदि के माध्यम से मानव शरीर में निरंतर आ रहा है। यदि रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग को समय रहते न रोका गया तो आगे आने वाले समय में समस्त भोज्य पदार्थ विषयुक्त हो जाएँगे क्योंकि रसायनों के जहर का अवशेष कभी भी समाप्त नहीं होता है। यह वर्ष प्रतिवर्ष मानव शरीर में आकर एकत्रित हो रहा है। कृत्रिम जीवनाशकों (रसायन) के इन दुष्प्रभावों को देखते हुए यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि नाशीजीवों से फसलों की रक्षा के लिए ऐसे वैकल्पिक जैविक जीवनाशकों का प्रयोग किया जाए जो स्तनधारियों एवं अन्य अलक्षित जीव समूहों को नुकसान पहुँचाने वाले न हों जिससे कृषि पारिस्थितिकीय तंत्र व मानव स्वास्थ्य की रक्षा हो सके।

जैविक जीवनाशकों के प्रयोग से कृषि के पारिस्थितिकीय तंत्र में पाए जाने वाले मित्र जीव पूर्ण रूपेण सुरक्षित रहते हैं और केवल फसल को हानि पहुँचाने वाले नाशीजीव ही नष्ट होते हैं। इनके प्रयोग से नाशीजीवों में प्रतिरोधक क्षमता का विकास नहीं हो पाता है। इस प्रकार मित्र जीवों को संरक्षण मिलने से वे हमेशा नाशीजीवों पर हावी रहते हैं और वे कभी भी नाशीजीवों की संख्या को बढ़ने नहीं देते है। जैविक जीवनाशकों में पर्यावरण प्रतिरोध क्षमता नहीं होती है और वह सूर्य के प्रकाश द्वारा नष्ट हो जाते हैं जिससे मानव स्वास्थ्य व पर्यावरण पर इनका कुप्रभाव नहीं पड़ता है। जैविक जीवनाशक कई स्थानों पर रासायनिक जीवनाशक से सस्ते दामों पर आसानी से उपलब्ध हैं और इनके अपरिष्कृत सार तत्व आसानी से, यहाँ तक कि कृषकों द्वारा भी तैयार किए जा सकते हैं।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए नाशीजीवों के सफल नियंत्रण हेतु– जैविक जीवनाशकों का प्रयोग फसलों पर अपरिहार्य हो गया है, जिससे भारतीय कृषि का टिकाऊ विकास हो सके, कृषक फसलों में लगने वाली लागत को कम कर सके और आत्महत्या करने हेतु बाध्य न हों तथा पर्यावरण व मानव स्वास्थ्य की भी रक्षा हो सके। कृषकों के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए जैविक ज़ीवनाशकों के कुछ महत्वपूर्ण स्रोतों का विवरण इस प्रकार है–

नीम आज वानस्पतिक मूल का सर्वाधिक जैव कीटनाशक स्रोत है। नीम में विषाक्त तत्व अनेक कड़वे मिश्रणों के रूप में पाए जाते हैं जिसमें ऐजाडिरैक्टिन तत्व सर्वाधिक प्रभावी है जिसे निम्बोली से निकाला जाता है। निम्बोली में 0.2–0.3 प्रतिशत ऐजाडिरेक्टिन और 30–40 प्रतिशत तक तेल पाया जाता है। ऐजाडिरेक्टिन 0.3 प्रतिशत की 750 मिली से 1.00 लीटर मात्रा को 600–800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हे0 क्षेत्रफल में कीट नियंत्रण हेतु फसल में छिड़काव हेतु प्रयुक्त किया जाता है। नीम के उत्पाद कीटों के भोजन व अण्ड निक्षेपण में रुकावट डालते हैं और वे कीटों के विकास, उनमें रासायनिक अभिक्रियाओं और उनकी विषाक्तता पर रोक लगाते हैं। अगर कोई कीट एक प्रभाव से बचता है तो अन्य प्रभाव से नष्ट हो जाता है। नीम का प्रयोग 200 से अधिक जाति के कीटों की रोकथाम में सहायक है, इनमें ब्राऊन प्लांट.हॉपर, ग्रीन प्लांट हॉपर, स्टेम बोरर, जैसिड्स, एफिड्स, टिड्डी–टिड्डा, पाड बोरर और अन्न भंडारण के विभिन्न कीट शामिल हैं। नीम के उत्पाद पौधों में रोग उत्पन्न करने वाले फफूँदी, बैक्टीरिया आदि को भी समाप्त करने में सहायक हैं। कृत्रिम कीटनाशकों में मात्र एक सक्रिय घटक होता है, जिसके प्रति कीटों में प्रतिरोधी

क्षमता विकसित हो जाती है, किन्तु नीम से बने कीटनाशकों में यह आशंका नहीं रहती क्योंकि उनमें असंख्य जैवधर्मी सिद्धांत कार्य करते हैं।

क्राइजैंथियम के सूखे फसलों से पाइरेथ्रम निकलता है जो उड़ने वाले कीटों पर तेजी से मारक असर करता है। यह स्तनधारियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है। हाल के वर्षों में, अनेक पौधों का पता लगाया गया है, जिनमें विषाक्त तत्व होते हैं। इन तत्वों का इस्तेमाल हानिकारक कीटों के हमले के खिलाफ कारगर साबित हो रहा है। चम्पक के फूलों का रस मच्छर के लारवा को नष्ट करने में सहायक है। लैंटाना, तुलसी और विटिवर की पत्तियों का अरक लीफमाइनर्स कीटों पर नियंत्रण के काम आता है जो आलू, बैंगन, सेम, टमाटर, मिर्च, क्रूसीफेरी, मटर और प्याज की फसल को हानि पहुँचाते हैं।

हींग के घोल का प्रयोग लीफ हॉपर के प्रबन्धन के काम आता है। लीफ हॉपर वाइरस का वाहक है, जिसके कारण वर्षा ऋतु वाली भिंडी में येलो वेन मोजैक नामक रोग फैलता है। इस रोग के कारण भिंडी की फसल को बहुत हानि होती है। गेंदा की जड़ों का चूर्ण जमीन में इस्तेमाल करने से पौधों के जड़ों में लगने वाले गोलकृमि पर बेहतर नियंत्रण होता है। शरीफा के बीज का अरक पत्ता गोभी को अत्यधिक हानि पहुँचाने वाले कीट–डायमंड बैक मॉथ के विरुद्ध अत्यंत प्रभावी है। छोटा चकोतरा (सिट्रस पैराडिसी) के बीज का अरक, कोलाराडो पोटेटो बीटल और डेरेक (मेलिया ऐजेडर्क) की छाल का सार टोबैको कैटरपिलर और चने की फसल में छेद करने वाला कीट (हेलिकोवर्पा आरमीजेरा) के लिए एंटीफीडेन्ट्स (यानि भोजन में बाधक) का काम करता है।

हल्दी विभिन्न कीटों के लिए आकर्षक के रूप में काम करती है। हल्दी को सहायक फसल के रूप में उगाकर कीटों को मुख्य फसल के पास जाने से रोका जा सकता है। फलों के पौधों के चारों ओर हल्दी उगाने से उन कीटों को भगाया जा सकता है, जो फलों एवं पत्तों में छेद करते हैं। हल्दी की गाँठों का अरक छिड़काव के काम आता है। हल्दी की सूखी पत्तियों के चूर्ण में राख मिलाकर भण्डारण के दौरान वस्तुओं का संरक्षण किया जा सकता है। सूखी मिर्च और प्याज का प्रयोग अन्न भण्डारण में करने से खाद्यान्न भण्डारण के कीटों से रोकथाम की जा सकती है।

लेपीडोप्टरान वर्ग में कीट– पेक्टिनोफोरा गोसीपाइला, हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा, प्लूसिया, स्पोडोप्टेरा लिटूरा, ईयरिस, डाइक्रेसिया आब्लिकुआ, लूसीनोड्स अर्बानालिस का नियंत्रण बी.टी. एवं एन.पी.वी. के घोल के छिड़काव द्वारा आसानी से किया जा सकता है। फेरोमेन ट्रैप द्वारा लैपीडोप्टेरा वर्ग के नर कीटों को नष्ट किया जा सकता है। फसलों की जड़ों में लगने वाले रोंगों– विल्ट्स (उकठा), रूटराट, कालरराट आदि का नियंत्रण भी ट्राइकोडरमा वीरिडी ट्राइकोडरमा हरजियनम, ग्लाइयोक्लाडियन विरेनस् द्वारा बीज शोधन करके अथवा खड़ी फसल में गोबर की सड़ी खाद के साथ मिलाकर किया जा सकता है। खरपतवार के जैविक नियंत्रण के लिए पैरासाइट्स, प्रीडेटर्स और पैथोजेनेसस जैसे बायोएजेन्ट्स उपयोग में लाए जा सकते हैं। नागफनी का नियंत्रण कैक्टोब्लास्टिक कैक्टोरम एवं डाक्टाइलोपियस अपनटाई कीटों से किया जा सकता है। लैंटाना का नियंत्रण लैंटाना बग कीट द्वारा किया जा सकता है। काँग्रेस घास के नियंत्रण के हेतु जाइगोग्रामा बायोकोलोरेटा नामक कीट बहुत ही सफल हैं। जलकुम्भी का नियंत्रण अल्टरनेरिया इकोरनीरी नामक फफूँद व नियोकेटिना नामक कीट से सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

हमारे पास ऐसे पौधों की, मित्र जीवों एवं सूक्ष्मजीवों की विपुल सम्पदा है जिनमें विषाक्त तत्वों की खोज की जानी है और जिनके द्वारा परिष्कृत जीवनाशकों का विकास करना होगा जिससे निकट भविष्य में नाशीजीवों के नियंत्रण के ऐसे व्यावहारिक तरीके अधिक अमल में लाए जा सकेंगे जो पर्यावरण के अनुकूल और लागत की दृष्टि से उपयुक्त हों।

मास्टर ट्रेनर (आई.पी.एम.)
कार्यालय– जिला कृषि रक्षा अधिकारी
विकास भवन, इलाहाबाद–211002

प्रतिक्रिया

विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति 2003

प्रो0 रामचरण मेहरोत्रा

वर्ष 2003 का शुभारम्भ ही उपयुक्त नीति की घोषणा से हुआ है और इसके महत्व को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए अनेकानेक समाचारपत्रों में गणतन्त्र दिवस (2003) पर बहुत से विज्ञापन प्रकाशित किए गए हैं। यदि इस नीति में निर्देशित संकल्पों पर इसी उत्साह से कार्यान्वयन होता रहा तो निकट भविष्य (सन् 2020) तक हमारे भारतवर्ष की कायापलट हो जाएगी। हमारे देश में अन्य क्षेत्रों की ही भाँति वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रतिभा की कमी नहीं है। प्राचीन काल से ही भारतवर्ष इन दिशाओं में अग्रणी रहा है। परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़े वातावरण में भी हमारे दशे में रामन, रामानुजम, साहा, बीरबल साहनी, कृष्णन, वाडिया, प्रफुल्ल चन्द्र राय, विश्वेसरैया जैसे वैज्ञानिकों ने अपनी कार्यकुशलता से अति समृद्ध देशों को चकित कर दिया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग 10 वर्ष पहले ही जवाहर लाल नेहरू ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मेघनाद साहा की अध्यक्षता में एक नियोजन समिति बनाई थी, जो स्वतंत्र भारत में विज्ञान–तकनीक की सहायता से देश को शीघ्र सम्पन्न बना सके। दुर्भाग्यवश प्रशासनिक व्यवहार से क्षुब्ध होकर 1939 में प्रो0 साहा कलकत्ते चले गए और यह योजना बहुत प्रगति नहीं कर पाई।

स्वतंत्र भारत में बड़ी तत्परता से विज्ञान तथा तकनीक की सहायता से देश की तीव्र प्रगति के लिए राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ स्थापित की गईं। इण्डियन कौंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च, डिफेंस रिसर्च डेवेलपमेण्ट आर्गेनाइजेशन, एटॉमिक रिसर्च संस्थान आदि का गठन किया गया। इन सबके बाद सन् 1954 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) की भी स्थापना हुई। भाभा ऐसे वैज्ञानिक ने उस समय ही कहा था कि इन राष्ट्रीय संस्थानों ने विश्वविद्यालयों के अधिकांश वैज्ञानिकों को आकर्षित कर लिया है, जिसके कारण विश्वद्यिालयों में योग्य वैज्ञानिकों की संख्या नगण्य सी रह गई है।

विज्ञान नीति प्रस्ताव-1958

सन् 1958 में प्रसिद्ध 'विज्ञान नीति प्रस्ताव पारित किया गया, जिसका मुख्य ध्येय था कि वैज्ञानिक खोज कार्य को हर प्रकार से प्रोत्साहित किया जाए और इसके लिए आवश्यक सुविधाएँ तत्परता से उपलब्ध करायी जाएँ। सन् 1962 में चीन के आक्रमण से त्रसित नेहरू का ध्यान एक बार फिर अपने देश की वैज्ञानिक प्रगति पर गया और उन्होंने 1963 में दिल्ली में एक कार्यशाला आयोजित की जिसमें यह समीक्षा की जा सके कि 5 वर्षों के अन्तराल में 'विज्ञान नीति प्रस्ताव' पर कितना अमल हुआ है। इस कार्यशाला में उनके मंत्रिमंडल के अधिकांश सदस्य, विभिन्न विज्ञान–तकनीक संस्थाओं के प्रमुख निदेशक पूरे ढाई दिन तक बराबर उपस्थित रहे। संयोगवश शायद सी एस.आई.आर. के प्रबन्धक समिति का सदस्य होने के नाते मेरे ऐसे अध्यापक को भी इसमें बुला लिया गया। विभिन्न संस्थानों की कठिनाइयाँ सुन लेने के बाद पण्डित नेहरू ने दूसरे दिन मुझसे सीधा प्रश्न किया कि आप विश्वविद्यालयों की परिस्थितियों पर कुछ प्रकाश डालें।

संयोगवश दो तीन दिन पहले हुई एक घटना की कुछ अनुभूति से मैं अत्यन्त क्षुब्ध था, शायद इसीलिए तुरन्त उबल सा पड़ा : पंडित जी मैं पिछले लगभग 20 वर्षों से इलाहाबाद, लखनऊ, गोरखपुर और जयपुर ऐसे

क्षेत्रीय विश्वविद्यालयों में रसायन–शास्त्र का अध्यापक रहा हूँ और पिछले 5 वर्षों से विभागाध्यक्ष एवं साइंस फैकल्टी का डीन रहने का भी अवसर प्राप्त हुआ है। हमारे विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के मद में एक पैसा भी नहीं रहता। अनुसंधान भी प्रायः अध्यापक इस उद्देश्य से करते हैं कि वह उनकी पदोन्नति में सहायक हो सके।' बात पुरानी हो गई है, परन्तु तत्कालीन अति–प्रतिष्ठित इलाहाबाद विश्वविद्यालय में मैंने अपने विभागाध्यक्ष से अनुरोध किया था कि मेरी खोज के लिए आवश्यक लगभग 10 ग्राम मरक्यूरोक्रोम मँगवा दीजिए जिसका मूल्य लगभग 2 रुपया होगा, धनाभाव के कारण उनकी स्पष्ट 'न' सुनकर मुझे अपने मासिक वेतन (लगभग 200 रुपये) में से बचत करके स्वयं यह व्यय वहन करने का साहस करना पड़ा।'

'सौभाग्यवश छठी दशाब्दि से यू.जी.सी. एवं सी.एस.आई.आर. से वैज्ञानिकों को कुछ व्यक्तिगत प्रोजेक्ट और विभागों को उपकरणों आदि के लिए पंचवर्षीय योजना के अनुदान भी मिलने लगे हैं। विभागों में केवल एक प्रोफेसर होता है, जिसे विभागाध्यक्ष का कार्यभार भी वहन करना पड़ता है। इस छोटे से अनुदान के लिए विभाग की आवश्यकतानुसार उपकरणों की तालिका बनाना, कम्पनियों से उनका मूल्य ज्ञात करके 'आयात लाइसेंस' प्राप्त करने के लिए यह सर्टीफिकेट प्राप्त करना कि वह उपकरण भारत में नहीं बन पाया है और फिर आवश्यकताओं की प्राथमिकता के आधार पर तालिका का प्रार्थना पत्र आयात–निर्यात नियंत्रक को प्रेषित करना। प्रायः नियंत्रक का दफ्तर विभाग द्वारा इंगित प्राथमिकता की ओर ध्यान देकर कम्पनियों के गुमाश्तों के दबाव में कुछ उपकरणों का आयात–परमिट विभागों को भेज देता है। इस बार मैं वर्तमान मीटिंग के लिए दिल्ली आ ही रहा था, सोचा विभाग की आवश्यकताओं की प्राथमिकता के अनुसार आयात परमिट प्राप्त कर लूँ। नियंत्रक जी के दफ्तर 10 बजे ही पहुँच गया, परन्तु कर्मचारियों ने मुझे मिलने का अवसर ही नहीं दिया। वह उनकी हथेली गरम करने वाले आगंतुकों को ही मिलवाते रहे। निराश 4 बजे शाम नीचे उतर आया तो न मालूम कैसे विचार कौंधा कि नियंत्रक महोदय को नीचे से टेलीफोन करूँ। सौभाग्य से टेलीफोन स्वयं नियंत्रक महोदय ने उठाया तो मैंने उनको अपनी व्यथा बताई। यह जानकर कि मैं राजस्थान विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष एवं डीन भी हूँ, उन्होंने अनुरोध किया कि आप सीधे मेरे कमरे में आ जाइए। उनके दफ्तर के बाबू आदि तो चले गए थे, परन्तु उन्होंने मेरी प्राथमिकताओं की क्रमवार सूची लेकर आश्वासन दिया कि उसी के अनुसार 'परमिट' अवश्य भिजवा दिया जाएगा। सन्तोष हुआ कि इस बार इतना समय बर्बाद होने पर भी सफलता मिली, परन्तु कितने विभागाध्यक्ष इतना परिश्रम करके भी सफल हो पाते होंगे ?'

पण्डित नेहरू मेरी बातों को सुनकर द्रवित से हुए और बगल में बैठे वित्त मंत्री श्री सुब्रमणियम से पूछा कि विश्वविद्यालयों को इस प्रकार के आयात करने के लिए कुल कितनी विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है। जब उनको यह ज्ञात हुआ कि कुल रकम 5 करोड़ रुपये से भी कम होती है तो उनका प्रश्न था कि इतनी छोटी सी रकम कम से कम ऐसे ढंग से खर्च की जानी चाहिए कि विभागों को बिना कठिनाई कें उपयुक्त उपकरण मिल सकें। इस पर मैंने सुझाव दिया कि इसके लिए अंकित सब अनुदान को यू.जी.सी. को दे दिया जाए जो सब विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं को एक कमेटी द्वारा आँक कर उनको उनकी आवश्यकतानुसार उपकरणों को आयात करने की सुविधा प्रदान कर दे। तत्कालीन यू.जी.सी. अध्यक्ष प्रोफेसर कोठारी जी, जो एक महान वैज्ञानिक थे, तुरन्त इस सुझाव के क्रियान्वयन के लिए सहमत हो गए, जिससे विश्वविद्यालयों का कार्य अपेक्षतया सुगम हो गया। मुझे जयपुर लौटने पर लगभग 1 सप्ताह बाद नेहरू जी का स्व–हस्ताक्षरित आभार–पत्र प्राप्त होने पर अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

उपर्युक्त घटना को लगभग 40 वर्ष हो गए हैं और परिस्थितियाँ इस अन्तराल में बहुत सुधर गई हैं, तथापि नई समस्याएँ आती ही रहती हैं और क्रमशः सुलझ भी जाती हैं। प्रसन्नता है कि नई 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति (2003)' में प्रथम निर्णय यही लिया गया है कि 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी की समस्त प्रणाली को भरपूर सुदृढ़ किया जाएगा और उसे पूर्ण स्वायत्तता दी जाएगी, उसे सुगम्य बनाया जाएगा और नौकरशाही के चंगुल से मुक्त किया जाएगा।'

प्रौद्योगिकी नीति वक्तव्य-1983

सन् 1983 में उपर्युक्त वक्तव्य के माध्यम से यह प्रस्तावित किया गया कि अपनी देशज प्रौद्योगिकियों का यथासम्भव विकास किया जाए एवं आयातित औद्योगिकी को स्वदेश के हित में समाहित अपनी प्राथमिकताओं और उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखते हुए अधिकाधिक उपयोगी रूप में कार्यान्वित किया जाए।

मैंने उपर्युक्त ध्येयों की प्राप्ति के लिए कुछ वर्ष पहले तत्कालीन साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में कुछ लेख लिखे थे, जिसमें प्रधानतः यह सुझाव दिया गया था, कि जब भी विदेशों से कोई प्रौद्योगिकी आयातित की जाए, तो प्राप्त Know How के साथ ही या उसके पहले ही उसकी Know Why पर अनुसंधान प्रारम्भ कर दिया जाए, जिससे उसके उत्पादन तक के लगे समय (प्रायः 1–2 वर्ष) में उसे अधिक उन्नत किया जा सके और अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल परिवर्तित किया जा सके।

इस वक्तव्य का विश्वविद्यालयों आदि से कुछ स्पष्ट सरोकार ही नहीं था और इस पर कुछ विशेष अनुसरण भी नहीं हुआ, इसलिए इस वक्तव्य पर मैं अधिक चर्चा नहीं कर रहा हूँ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति 2003

प्रसन्नता की बात है कि नई घोषित नीति में पहली बार विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षण संस्थानों की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है और मद 3 के अन्तर्गत 'शैक्षिक संस्थाओं में विज्ञान और प्रौद्योगिकी अवसंरचना को सुदृढ़ करना' इस नीति में स्पष्ट रूप से समाहित किया गया है। साथ ही मद 5 के अन्तर्गत 'मानव संसाधन विकास' पर विशेष बल दिया गया है।

इस नई नीति के अन्तर्गत मद 12 में 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रति जनजागरूकता' के महत्व की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है। इस दिशा में भी लेखक का अनुभव पुराना है, परन्तु शायद उल्लेखनीय है।

सन् 1964 में सी.एस.आई.आर. बोर्ड की प्रथम (मार्च) मीटिंग में मैंने अध्यक्ष (तत्कालीन प्रधानमंत्री) का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि सी.एस.आई.आर. के उद्देश्यों में जनसाधारण में विज्ञान के प्रति रूचि स्थापित करना शामिल है, परन्तु इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। अधिक कुरेदने के बाद ज्ञात हुआ कि सी.एस.आई.आर. इस उद्देश्य के पालन में 'विज्ञान प्रगति' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित करती तो है, परन्तु उसकी लगभग 500 प्रतियाँ ही छपती हैं, जो अधिकांश उसकी प्रयोगशालाओं में, अन्य संस्थाओं, इने–गिने वैज्ञानिकों और दस से भी कम ग्राहकों को उपलब्ध करा दी जाती हैं। उपस्थित सभी सदस्य इस जानकारी से स्तब्ध रह गए। बैठक की समाप्ति के बाद प्रधानमंत्री तथा सी.एस.आई.आर. के महानिदेशक ने मुझे बुलाया और 'विज्ञान प्रगति' का भार मेरे ऊपर डालने का प्रयत्न किया। मैं इसके लिए तैयार नहीं था, परन्तु बहुत आनाकारी के बाद जब यह हठ किया गया, तो मैंने कहा कि मैं जयपुर में अपना कार्य करता रहूँगा, यहाँ दिल्ली में एक उत्साही सहयोगी चुनकर इस ओर प्रयास करूँगा। मुझे स्वयं तो इसके लिए एक पैसा भी नहीं चाहिए, परन्तु मैंने इसी क्षण कुछ अनुमान लगाया है कि लगभग 50–60 पृष्ठ की पत्रिका को सुगम्य रोचक रूप से छापने में लगभग 25 हजार रुपए की लागत आएगी, परन्तु उसका चन्दा केवल 5 रुपए रख कर सब बच्चों तथा अन्य व्यक्तियों को आकर्षित करने का भरसक प्रयास किया जाएगा। साल भर के अन्दर आशा करता हूँ कि लगभग 1 लाख प्रतियाँ छपने लगेंगी और इस प्रकार इस महान उद्देश्य के लिए सी.एस.आई.आर. पर लगभग 20 लाख रुपए सालाना का बोझ पड़ेगा। महानिदेशक महोदय की ओर से कुछ हिचकिचाहट व्यक्त की गई, तो मेरा कथन था कि मुझे पिछले वर्ष ही 12–14 लाख की व्यक्तिगत प्रोजेक्ट खोज कार्य के लिए दी गई है, तो इतने महान राष्ट्रीय कार्य के लिए 20 लाख सालाना की रकम कुछ अधिक नहीं मानी जानी चाहिए।

सौभाग्य से मुझे श्री कृष्ण मुरारी लाल अग्रवाल नामक सी.एस.आई.आर. का ही एक अत्यन्त उत्साही सहयोगी मिल गया और हम अपने प्रयास में पूर्णतया सफल हुए। सन् 1965 में पाकिस्तान युद्ध के समय 'विज्ञान–प्रगति' का 'रक्षा अंक' प्रकाशित किया गया

शेष पृष्ठ 29 पर ....

यौन व युवा : खतरे के संकेत

डॉ0 विनया पेंडसे

प्रजनन स्वास्थ्य अनुसंधान के तहत विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा विश्व स्तर पर व खासकर दक्षिण एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के कुछ देशों में किशोरवर्ग (10–19 वर्ष) व युवा वर्ग (15–24 वर्ष) में विभिन्न अध्ययन किए गए। ये अध्ययन कुछ शिक्षण संस्थाओं के छात्र, छात्राओं, जनसमूहों, कारखानों में कार्यरत व कुछ जन समुदायों के अविवाहित युवावर्ग में किए गए। इन जनसमूहों की सांस्कृतिक व सामाजिक पृष्ठभूमि भिन्न भिन्न थी। इन अध्ययनों से सम्मिलित रूप से जो बातें उजागर हुईं वह इस प्रकार हैं।

यौन गतिविधियाँ

अधिकतर में यह किशोर अवस्था में प्रारम्भ हुई। ये गतिविधियाँ संस्थाओं में युवक युवती का साथ रहना, एकान्त में समय व्यतीत करना, एक दूसरे को चाहना, प्यार भरी बातें करना, एक दूसरे की याद में समय व्यतीत करना, शारीरिक निकटता स्थापित करना व अन्त में यौन सम्बन्ध यानि सहवास थी। यौन सम्बंधों की बारम्बारता एशियाई देशों में 2–11 प्रतिशत, लेटिन अमेरिका देशों में 12–25 प्रतिशत व अफ्रीका के देशों में 45–55 प्रतिशत पाई गई।

प्रथम बार सहवास के समय लड़के की आयु 15–17 वर्ष अफ्रीकी देशों में, लगभग 15 वर्ष लेटिन अमेरिका के देशों में तथा 16–20 वर्ष एशियाई देशों में पाई गई। लड़कियों की आयु लगभग सभी देशों में 15–20 वर्ष पाई गई।

एशियाई देशों में विवाह से पूर्व सहवास का अनुभव लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में लगभग पाँच गुना अधिक पाया गया। इसका मुख्य कारण इस क्षेत्र में व्याप्त स्त्री पुरुष के व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अन्तर है जो यहाँ की सांस्कृतिक व सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप है।

एक से अधिक यौन साथी होने की बात लगभग सभी अध्ययनों में युवकों में अधिक पाई गई। दो अध्ययनों में यह 25 प्रतिशत व 69 प्रतिशत पाई गई। अधिकतर अध्ययनों में लगभग 80 प्रतिशत युवतियों ने एक मात्र यौन साथी की पुष्टि की जिसका लक्ष्य रिश्ते में स्थायित्व लाना व विवाह था।

सहवास क्यूँ किया गया इस आशय पर भी युवक युवतियों की भावनाओं में अन्तर था। अधिकतर युवतियों व कुछ युवकों ने इसे प्यार व साथ निभाने की प्रतिबद्धता माना। अधिकतर युवकों ने इस एक उत्कंठावश, शारीरिक आवश्यकतानुसार व समूह साथियों के दबाववश माना।

क्या विवाह से पूर्व सहवास की मान्यता होनी चाहिए इस बात पर युवक युवतियों की मिलीजुली प्रतिक्रिया रही। युवतियों की अपेक्षा युवकों ने इसका समर्थन किया। परन्तु क्या दोनों के लिए यह मान्यता समान हो इस बात पर अधिकतर युवक युवतियों ने यह बताया कि यह लड़कों के लिए ज्यादा सही व मान्य है। लड़के लड़कियों हेतु इस प्रकार का दोहरा मापदण्ड एशियाई व लेटिन अमेरिका के देशों में देखने को मिला। विवाह से पूर्व लड़की कुमारी होनी चाहिए यह

सोच भी इन अध्ययनों में देखा गया।

प्रभावित करने वाले घटक

यौन गतिविधियों को प्रभावित करने वाले कुछ घटक साथी समूह का प्रभाव या दबाव, शराब व अन्य प्रकार का नशा, यौन उत्तेजना प्रदान करने वाली फिल्में देखना या साहित्य पढ़ना, स्वयं की काम इच्छा पर नियंत्रण नहीं कर पाना इत्यादि थे। एशिया के एक देश के विश्वविद्यालय के 62 प्रतिशत छात्राओं व 70 प्रतिशत छात्रों ने शराब को यौन सम्बन्ध स्थापित करने हेतु सहायक माना।

इस हेतु जबरदस्ती व दबाव भी 5–10 प्रतिशत युवतियों में पाया गया। यह अधिकतर आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से कमजोर व कारखानों में काम करने वाली युवतियों के साथ हुआ। बहुत से युवतियों ने आर्थिक मजबूरीवश इसे अपनाया। जबरदस्ती व दबाव डालने वाले अधिकतर उमरदार पुरुष, परिवार के सदस्य व साथ में काम करने वाले पुरुष थे।

खतरे

इससे शरीर पर या स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव पड़ सकता है इस सोच का व्यापक अभाव पाया गया। अधिकतर यानि 80 प्रतिशत को यौन रोगों व एड्स के विषय में थोड़ी बहुत जानकारी थी। परन्तु इसका व्यावहारिक ज्ञान नहीं था। सुरक्षित यौन सम्बन्ध क्या होते हैं इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को थी। इतनी कम आयु में, विवाह से पूर्व, बिना गर्भनिरोध के, एक से अधिक यौन साथी यह सभी बातें इस क्रिया को असुरक्षित बनाते हैं इस प्रकार की जानकारी व सोच नहीं थी। लगभग 15–20 प्रतिशत युवाओं ने यौवन रोग हुआ था ऐसा माना।

गर्भनिरोध के प्रकारों की जानकारी व उपयोग के बारे में सभी देशों के अध्ययन से प्राप्त आँकड़े निराशाजनक थे। अधिकतर युवकों को निरोध की जानकारी थी परन्तु अनेक कारणवश यह उपयोग में नहीं लाया गया। कहीं कहीं पर युवतियों ने यह माना कि गर्भनिरोध का निर्णय उन्होंने अपने साथी पर छोड़ा। उन्होंने यह भी माना अगर वह इसे लेने या खरीदने जाती है तब यह बातें किसी को पता चल जाएगी इसका भय रहता है। सभी क्षेत्रों के युवावर्ग ने यह माना कि गर्भनिरोध प्राप्त करने का स्रोत निजी व गोपनीय हो।

अलग अलग अध्ययनों में लगभग 30–40 प्रतिशत युवतियों ने यह माना कि गर्भधारण हुआ था। अधिकतर यानि 85 प्रतिशत ने गर्भपात करवाया। गर्भपात में खासकर प्रथम बार के गर्भ में, खतरे या शारीरिक क्षति इत्यादि की सम्भावना रहती है इस बात पर सभी ने अनभिज्ञता दर्शाई। शर्म व अज्ञानतावश 15 प्रतिशत युवतियों ने समय पर निर्णय नहीं लिया या परिवार जनों से लम्बे समय तक छिपाया। वह अविवाहित असुरक्षित मातृत्व का शिकार बनी व उनकी सन्तानें पिता के साये व सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित रहीं।

जानकारी का स्रोत

यौन सम्बन्धी जानकारी के विषय में अधिकतर ने बताया कि उन्हें यह मीडिया व साथियों से मिली। लगभग सभी क्षेत्रों के युवावर्ग ने बताया कि अन्य स्रोतों की अपेक्षा साथियों से यह जानकारी लेना, इस सम्बन्ध में चर्चा करना उन्हें अच्छा व सुविधाजनक लगता है। बहुत कम को यह जानकारी परिवार से मिली। युवकों के अपेक्षा युवतियों ने इसे परिवार खासकर माँ से प्राप्त करने को स्वीकारा। किस प्रकार की जानकारी माँ से प्राप्त की इस बात पर अधिकतर ने बताया कि मासिक धर्म, गर्भधारण इत्यादि की जानकारी उन्होंने माँ से प्राप्त की परन्तु यौन सम्बन्ध, गर्भ निरोध इत्यादि के विषय में उन्हें अपने साथी व मीडिया से पता चला।

जिन देशों में प्रजनन स्वास्थ्य शिक्षा स्कूलों में दी जाती है वहाँ पर अधिकतर छात्र–छात्राओं ने यह बताया कि यह जानकारी अपर्याप्त है। यौन शिक्षा में फोकस यौन संबंध पर होना चाहिए व इसकी जानकारी का स्रोत स्वास्थ्य कार्यकर्ता हो न कि शिक्षक या माता पिता।

अध्ययन का महत्व

भारत के सन्दर्भ में इस अध्ययन का विशेष

महत्व है। सभी के द्वारा सुरक्षित यौन सम्बंधों के प्रभाव का दायरा बहुत विस्तृत है। इसमें नियोजित गर्भधारण, यौन रोगों से बचाव, सीमित परिवार, सुरक्षित मातृत्व, बाल विकास, जनसंख्या नियंत्रण, जीवन की गुणवत्ता में सुधार, पर्यावरणीय सन्तुलन इत्यादि निहित हैं। जनसंख्या विस्फोट, बढ़ती गरीबी, बेरोजगारी स्वास्थ्य समस्याओं से त्रस्त व अब अनुमानित 40 लाख एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्तियों के इस देश को बचाने का एकमात्र उपाय है सभी को यौन शिक्षा प्रदान कर उसे व्यावहारिक बनाने हेतु व्यवस्था करना।

मनुष्य में यौन व प्रजनन क्रिया वैसे ही अभिन्न है जैसे आग व ताप। इसलिए यौन यानि प्रजनन शिक्षा है। इस शिक्षा कार्यक्रम के नियोजन में इस प्रकार के अध्ययन उपयोगी होते हैं। प्रजनन स्वास्थ्य अनुसंधान आज समस्त विश्व की प्राथमिकता है। यौन शिक्षा को विकसित करने के लिए एक खुली सोच आवश्यक है। यह मात्र स्कूली शिक्षा न होकर पारिवारिक व सामाजिक शिक्षा भी बने तभी यह सार्थक होगी।

आजकल शिक्षित परिवारों में बच्चों में कैरियर के प्रति माँ बाप में एक गहरी चिन्ता व बेचैनी है। परन्तु गौर करें, सबसे महत्वपूर्ण कैरियर आपके बच्चे के भावी यौन जीवन का है। उस हेतु क्या समुचित शिक्षा व्यवस्था है ? किशोर अवस्था के बच्चों की कुंठाओं व मनः स्थिति को समझने या समझाने में क्या वह काबिल है ? किशोर अवस्था की यौनिकता एक खतरनाक मोड़ से गुजरती है। अनेक बार खतरे के संकेत देती है, गलतफहमियों की शिकार हो सकती है, यौन गतिविधियों को सहवास तक ले जा सकती है व एच.आई.वी. संक्रमण को निमन्त्रण दे सकती है। किशोर व युवावस्था में होने वाली यौन समस्याओं से बचने का टीका यौन या प्रजनन स्वास्थ्य शिक्षा है।

10-11, बनेडा हाउस
फतहपुरा
उदयपुर-313004

पृष्ठ 26 का शेष ....

और आत्मविश्वास तब जाग्रत हुआ जब रक्षातन्त्र वालों ने हमसे 1 लाख अधिक प्रतियों की माँग की।

आज भी देश में **विज्ञान परिषद् ऐसी संस्थाएँ हैं जो धनाभाव की परिस्थितियों में भी इस ओर लगभग 90 वर्षों से अथक प्रयास कर रही हैं**– ऐसी संस्थाओं को समुचित अनुदान देकर इस कार्य में सफलता पाई जा सकती है।

निष्कर्ष

लेखक पिछले मास 'विज्ञान' में प्रकाशित लेख में 'विश्वविद्यालयों में शिक्षण अनुसंधान तथा तकनीक के त्रिकोण' पर चर्चा कर चुका है। आशा की जानी चाहिए कि नई 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति' के क्रियान्वयन में इस त्रिकोण पर विशेष ध्यान दिया जा सके।

अभी तक के अनुभवों के आधार पर प्रायः यह धारणा बन गई है कि 'संकल्प / नीति' आदि बनाने में हम बहुत सक्षम हैं, परन्तु उनके क्रियान्वयन में अत्यन्त शिथिल रूप से प्रयास हो पाता है। आशा है आगामी 1–2 दशकों में अपरिमित उत्साह और राष्ट्रीय गौरव की भावना से हमारा देश इस नई विज्ञान और औद्योगिक नीति में दर्शाए मार्गों को अपना कर संसार में उच्चतम स्थान बना लेगा। इसके लिए आवश्यकता है केवल विदेशीय प्रलोभनों से मुख मोड़ कर अपरिमित राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने की। हमें नालन्दा विश्वविद्यालय ऐसे उच्चतम संस्थानों की विरासत मिली है और हमारे उच्च शिक्षा–संस्थानों को इसी थाती को दुबारा प्राप्त करना है।

4/682, जवाहर नगर,
जयपुर-302004

जीन संरक्षण

वर्तमान सदी में बीज बैंक की महत्ता

श्रवण कुमार

आज विश्व में मानव जनसंख्या 6 बिलियन से आगे निकल चुकी है। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि इस बढ़ती हुई आबादी में ठहराव इसके दो गुना होने के बाद ही आएगा। बढ़ती आबादी की बुनियादी आवश्यकताएँ कैसे पूरी होंगी ? यह एक विचारणीय विषय है।

पिछले वर्ष में नई दिल्ली में आयोजित 'अन्तर्राष्ट्रीय फसल विज्ञान सम्मेलन' के दौरान कृषि वैज्ञानिकों द्वारा दी गई सूचना के अनुसार यदि जनसंख्या वृद्धिदर 1.8 प्रतिशत मान ली जाए तो वर्ष 2030 तक सभी लोगों को पेट भरने के लिए 26 करोड़ टन से ज्यादा खाद्यान्न की आवश्यकता होगी। विशेषज्ञों का मानना है कि आने वाले तीस–चालीस वर्षों में स्थिति पर्यावरणीय दृष्टिकोण से और भी जटिल हो सकती है। पूरी दुनिया में पीने तथा सिंचाई के लिए जल का घोर अभाव होगा। विभिन्न प्रकार का प्रदूषण विकट रूप में होगा। कृषि योग्य भूमि की उर्वरता बड़े पैमाने पर

ह्रास हो जाएगी। जैवविविधता के नष्ट होने की गति तथा उपयोगी जैव संसाधनों के लुप्त होने की गति तीव्र से तीव्रतम हो जाएगी। दुनिया में बढ़ती मानव आबादी को भुखमरी से बचाने के लिए कृषि उत्पादकता को बढ़ाना ही होगा। कृषि उत्पादकता में वृद्धि दो प्रकार से ही संभव है। पहली– 'वर्तमान कृषि क्षेत्र में विस्तार करके' तथा दूसरा– 'कृषि प्रजातियों की उत्पादकता को बढ़ाकर'। कृषि क्षेत्र के विस्तार में अनेक खामियाँ, कठिनाईयाँ तथा हानियाँ हैं। नए क्षेत्र में कृषि कार्य उस क्षेत्र में पाई जाने वाली जैवविविधता के लिए घातक होगा तथा उस क्षेत्र के पर्यावरण को प्रदूषित कर
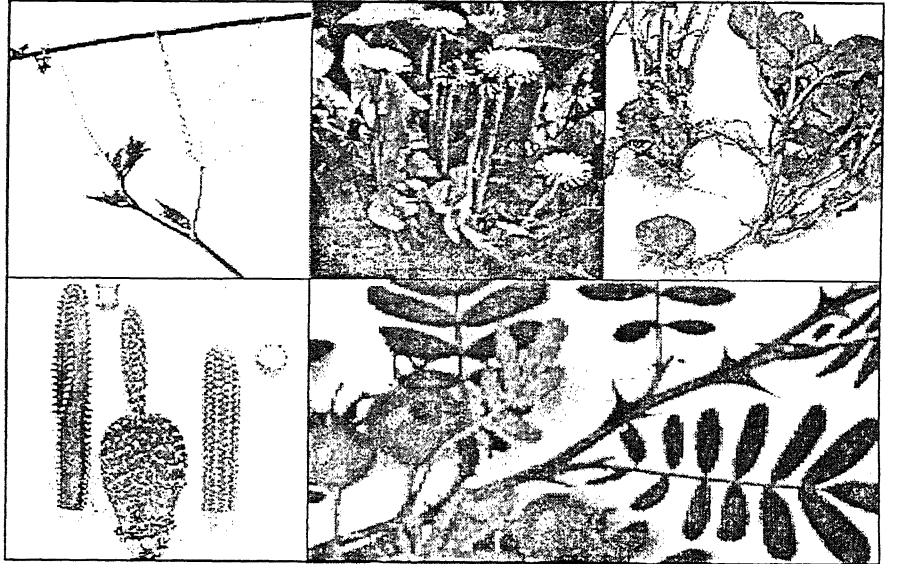
समस्या को और बढ़ा देगा। दूसरी विधि में जैवप्रौद्योगिकी की सहायता से कृषि प्रजातियों में नए जीन का समावेश करके उनकी उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। बीजबैंक अथवा जीनबैंक विभिन्न प्रकार के गुणों वाले जीन के स्रोत हो सकते हैं। जीन बैंक की सहायता से जैवप्रौद्योगिकी को माध्यम बनाकर कृषि प्रजातियों की उत्पादकता को मानव जाति की आवश्यकता के अनुरूप बनाए रखा जा सकता है। वह स्थान जहाँ विभिन्न प्रकार की उपयोगी वनस्पतियों के बीज कम तापमान पर अधिक लम्बे समय तक संग्रहीत किए जाते हैं, बीज बैंक कहा जाता है। बीज बैंकों की स्थापना विश्व के विभिन्न हिस्सों में की गई है। बीज बैंकों के बीज विश्व के विभिन्न हिस्सों में संग्रहीत किए जाते है। भारत तथा चीन के प्राचीन ग्रंथों में वन संशोधनों एवं विभिन्न प्रकार के उपयोग जन्तुओं के संरक्षण की चर्चा मिलती है। 'ऋग्वेद' में उत्तम बीज एवं उपजाऊ मृदा की महत्ता का वर्णन मिलता है। अब इन्हीं गुणों का भविष्य में अभाव होने की सम्भावना है–

'सुबीजम् सुक्षेत्रे जायते सम्पद्यते'

आधुनिक समय में वानस्पतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए बीज बैंकों की तकनीक प्राचीन तकनीक से पूर्ण रूप से भिन्न है। बीज बैंकों की परिकल्पना के पूर्व ही मानव को कम तापमान पैदा करने की तकनीकी का ज्ञान प्राप्त हो चुका था। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही बर्फ जमाने तथा मांस को ठण्डा रखने की तकनीक प्रयोग में लाई जाने लगी थी। ठण्डे मांस का निर्यात बहुत बड़े पैमाने पर अर्जेण्टीना से यूरोप के लिए किया जाता था। वर्ष 1920 में फ्रिआन आधारित फ्रीजरों का विकास हुआ। बीज बैंक वास्तव में फ्रिज एवं फ्रीजर का मिला जुला रूप है। आधुनिक बीज बैंक की समयावधि को आधार मानकर इसे तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। अतिलघु कालीन, लघुकालीन एवं दीर्घकालीन। अति लघुकालीन बीज बैंक में बीजों को साधारण तापमान से छः डिग्री सेल्सियस के बीच रखा जाता है एवं उनकी अंकुरण क्षमता का परीक्षण प्रतिवर्ष किया जाता है। लघुकालीन बीज बैंकों में हिमांक से नीचे (-5°C) पर संरक्षित किया जाता है। इसमें बीजों को पाँच से दस वर्ष के लिए संरक्षित किया जा सकता है। जबकि दीर्घकालीन बीज बैंकों में बीजों को दस से बीस वर्ष तक संरक्षित किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि बीज बैंक में बीज को सुरक्षित रखने के लिए न्यून तापमान की स्थिति अनवरत रूप से आवश्यक होती है। बीज बैंकों में कृत्रिम रूप से कम तापमान की स्थिति पैदा करने के लिए फ्रीजर ही मुख्य आवश्यकता है। इन फ्रीजरों को लगातार क्रियाशील रखने के लिए विद्युत आपूर्ति निर्बाध रूप से आवश्यक है। बीज बैंकों का संचालन तथा प्रबंधन इसी कारण से मँहगा है।

विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में बीज बैंकों के प्रति जागरूकता अधिक है। इसके मुख्य रूप से दो कारण हैं, पहला– विकसित देशों में जैव प्रौद्योगिकी की उच्च तकनीक का उपलब्ध होना तथा दूसरा– आर्थिक सम्पन्नता। वर्ष 1899 में अमेरिकी सरकार ने अपने सभी दूतावासों को विश्वस्तर पर उपयोगी वनस्पतियों के बीजों को संग्रह हेतु आदेश दिया था। वर्ष 1920 में रूस के निकोलोई वेबिलोव के नेतृत्व में विश्व के विभिन्न भागों में बीजों के संग्रह का कार्य आरम्भ हुआ। वर्ष 1947 में अमेरिका ने ऐम्स में बीजों के संग्रहण हेतु एक क्षेत्रीय बीज बैंक की स्थापना की। विश्व स्तर पर बीज बैंकों की स्थापना हेतु वर्ष 1961 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा एक सम्मेलन आयोजित किया गया। वर्ष 1972 में स्टाकहोम सम्मेलन के दौरान संयुक्त राष्ट्र ने जीन संसाधनों के संरक्षण हेतु एक कार्यक्रम बनाया तथा उसपर अमल करने का निर्णय लिया। वर्ष 1974 में 'इण्टरनेशनल बोर्ड फार प्लाण्ट जेनेटिक रिसर्च' की स्थापना हुई तथा इसका मुख्यालय रोम में स्थापित किया गया। इसके तत्काल बाद इस संस्था ने विश्व स्तर पर 43 बीज बैंकों की एक श्रृंखला विश्व के विभिन्न भागों में स्थापित की। वर्ष 1985 में नई दिल्ली में भी एक जीन बैंक की स्थापना की गई। वर्ष 1989 में अन्तर्राष्ट्रीय बीज बैंक स्थापित करने का प्रस्ताव संयुक्त राष्ट्रसंघ की तरफ से लाया गया है।

वर्तमान समय विश्व स्तर पर अनेक बीज बैंक विश्व के विभिन्न हिस्सों में स्थापित किए गए हैं। इन बीज बैंकों में विश्व के विभिन्न हिस्सों की भिन्न भिन्न जलवायु में उपयोगी वनस्पतियों के बीजों का संग्रह किया गया है। फिलीपीन्स स्थित इण्टरनेशनल राइस रिसर्च इंस्टीट्यूट विश्व का सबसे बड़ा बीज बैंक है। बीज बैंकों की स्थापना के पीछे वैज्ञानिकों की जो सोच काम कर रही है उसका मुख्य आधार यह है कि विभिन्न जलवायु क्षेत्रों से लाकर बीज बैंकों में संग्रहीत विभिन्न प्रकार के बीजों के जीन का उपयोग जैवप्रौद्योगिकी की सहायता से वनस्पतियों की निरोधक क्षमता को बनाए रखने में तथा उनकी उत्पादकता को अधिकतम करने में किया जा सकता है। इस प्रकार बीज बैंक से जीन का उपयोग करने में कृषि वैज्ञानिकों को सफलता भी मिली है।

आज अधिकांश जीन बैंक पश्चिमी देशों में स्थित हैं अथवा विकसित देशों के नियन्त्रण में हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे इन जीन बैंकों के रखरखाव में भारी आर्थिक सहयोग करते हैं। यद्यपि ये जीन बैंक अन्तर्राष्ट्रीय नियमों से नियन्त्रित हैं, परन्तु एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जो देश बीज बैंकों के रखवाले बने हुए हैं उनका उन प्रजातियों को बचा रखने में कोई योगदान नहीं रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि निर्धन एवं विकासशील देशों की जैवविविधता विकसित देशों के नियन्त्रण में है। उदाहरणार्थ, फिलीपीन्स में संग्रहीत तथा संरक्षित भारत की हजारों धान की प्रजातियों पर भारत का कोई नियन्त्रण नहीं है।

इसी प्रकार हमारे सभी सूक्ष्म जीवाणु अमेरिका में संरक्षित हैं क्योंकि उनको संरक्षित तथा संग्रहीत करने की सुविधाएँ हमने विकसित नहीं की हैं। दिल्ली में स्थापित राष्ट्रीय जीन बैंक भारत और अमेरिका के सहयोग से स्थापित किया गया। वर्तमान समय में जीन संसाधनों के विवादों एवं भविष्य तथा जैव प्रौद्योगिकी की बहुआयामी प्रयोग तथा पेटेन्ट के हथकण्डों को ध्यान में रखते हुए भारत के लिए यह हितकर होगा कि वह भी अपना बीज बैंक स्वतन्त्र रूप से स्थापित करे जो उसके अपने नियन्त्रण में हो।

बीज बैंक सामान्य रूप से एक मँहगा कार्यक्रम है। बड़े पैमाने पर बीज बैंक की स्थापना में धन एक बहुत बड़ी बाधा है। यद्यपि एक परम्परागत जीन बैंक की स्थापना एक कठिन कार्य है परन्तु गैर परम्परागत बीज बैंक के साथ ऐसा नहीं होता। जीन कैम्पेन नामक गैर सरकारी संस्था की संचालिका श्रीमती सुमन सहाय का मानना है कि भारत और पाकिस्तान के बीच ठण्डा क्षेत्र सियाचीन का उपयोग बीज बैंक की तरह किया जा सकता है। सियाचीन में अनवरत रूप से निम्न तापमान की स्थिति बनी रहती है। परिणामस्वरूप यह क्षेत्र प्राकृतिक फ्रीजर की तरह कार्य करता है। यदि हम कल्पना एवं कार्य करने का साहस कर लें तो यहाँ पर अपार क्षमता का बीज बैंक स्थापित किया जा सकता है। भारत एवं पाकिस्तान की सेनाएँ इन बीजों का रखरखाव करेंगी। ऐसा करके भारत उपमहाद्वीप की जैवविविधता के संरक्षण में एक महत्वपूर्ण योगदान किया जा सकता है परन्तु इसके लिए एक रचनात्मक सोच की आवश्यकता होगी और हममें से किसी एक को आगे आना होगा।

881बी/28बी/95ए
नेता चौराहा, अल्लापुर
इलाहाबाद–211006

हमारे नये विज्ञान पार्षद

डॉ० प्रकाश चंद्र पंत - कानपुर

वे चुपचाप चल बसे

प्रथम कलिंग पुरस्कार विजेता एशियाई : डॉ० जगजीत सिंह

डॉ0 रमेश दत्त शर्मा

15 मई 1912 को अमृतसर में जन्मे डॉ0 जगजीत सिंह को सन् 1963 में विज्ञान प्रसार के लिए यूनेस्को ने कलिंग पुरस्कार से सम्मानित किया था। वे इस पुरस्कार को प्राप्त करने वाले पहले एशियाई विज्ञान लेखक थे। उन्होंने लाहौर स्थित पंजाब यूनिवर्सिटी से सन् 1933 में गणित में एम.ए. किया था। पूरे विश्वविद्यालय में गणित में प्रथम स्थान पाने पर उन्हें उम्मीद थी कि उन्हें गणित के अध्यापन का अवसर दिया जाएगा, लेकिन लंबी प्रतीक्षा के बाद भी जब मौका नहीं मिला तो वे प्रशासनिक सेवा की परीक्षा में बैठ गए और 'रेलवे एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' में चुन लिए गए। विभिन्न पदों पर काम करते हुए उन्हें सन् 1965 में 'नॉर्थ ईस्ट फ्रण्टियर रेलवे' का जनरल मैनेजर बनाया गया। बाद में वे 'इण्डियन ड्रग्स एण्ड फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड के चेयरमैन और मैनेजिंग डायरेक्टर बने, जहाँ से सन् 1973 में रिटायर हुए। उसके बाद उन्होंने टाटा केमिकल्स में सलाहकार के पद पर काम किया।

जगजीत सिंह जी ने 17 किताबें लिखी हैं, जिनमें से पहली किताब उन्होंने सन् 1940 में 'फ्लूइड मिकेनिक्स' की स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तक के रूप में लिखी थी। लेकिन उन दिनों किताब छपवाना इतना आसान न था। उस समय लखनऊ विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष ने उनकी मदद की, जिनसे उनकी जान-पहचान हो गई थी, क्योंकि अक्सर वे लाइब्रेरी से किताबें लेने जाते थे। उन्होंने कई सैकड़ा किताबें छपवाईं, लेकिन छपाई और कागज इतना खराब था कि जगजीत सिंह को यह किताब किसी को दिखाने में भी शर्म आती थी। बाद में पता चला कि उस प्रकाशक का दिवाला ही निकल गया। उसके बाद वे 'हाइड्रोडाइनेमिक्स' पर भी दूसरा खण्ड लिखना चाहते थे, लेकिन पहले खण्ड के नतीजे से निराश होकर उन्होंने दूसरा खण्ड लिखने की हिम्मत नहीं की।

रेलवे बोर्ड उन दिनों तक 'टेक्निकल क्वार्टर्ली बुलेटिन' निकालता था, जिसमें जगजीत सिंह ने कुछ गणित संबंधी तकनीकी लेख प्रकाशित किए। ऐसे ही तकनीकी लेख उन्होंने डॉ0 पी.सी. महालनोबिस द्वारा 'इण्डियन स्टेटिस्टिकल इंस्टीट्यूट' से प्रकाशित 'सांख्य' और कुछ अन्य जर्नलों में भी छपवाए। इनमें सांख्यिकीय ज्ञान का रेलवे में उपयोग करने के बारे में उनके मौलिक विचार व्यक्त किए गए थे। इन सबको मिलाकर उन्होंने थीसिस के रूप में डाक्टरेट के लिए भेजा तो अंग्रेज समीक्षक ने उसे खारिज कर दिया। उन्होंने रेलवे के लिए 'आपरेटिंग स्टेटिस्टिक्स' पर एक रिपोर्ट भी तैयार की थी।

जगजीत सिंह ने उस जमाने के सभी मशहूर लेखकों की किताबें पढ़ डाली थीं। इनमें डॉ0 जे.बी. एस. हाल्डेन भी शामिल थे, जो स्वयं ललित विज्ञान के

धुरंधर लेखक थे। जगजीत सिंह अध्ययन–अवकाश लेकर लंदन गए थे और वहाँ डॉ0 हाल्डेन से मिले। हाल्डेन को जगजीत सिंह की गणित और सांख्यिकी संबंधी अभिरुचियों का पता चला तो उन्होंने प्रोफेसर जॉर्ज बर्नार्ड से मिलवा दिया। बर्नार्ड से जगजीत सिंह की जल्दी ही मित्रता हो गई, क्योंकि दोनों ही मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित थे। उन्होंने जगजीत सिंह को 'आपरेशन्स रिसर्च' से भी परिचित कराया और तब जगजीत सिंह ने ब्रिटिश रेलवे में इस नए विज्ञान के उपयोग को समझकर भारतीय रेलवे में 'आपरेशंस रिसर्च' के उपयोग पर एक रिपोर्ट तैयार की, लेकिन उनके बॉस ने यह रिपोर्ट सन् 1950 में उनके भारत लौटने पर रद्दी की टोकरी में फेंक दी, क्योंकि जगजीत सिंह उनकी नजर में एक 'ब्रिलिएण्ट' मगर 'इनइफेक्टिव इन्टलेक्चुअल' थे।

जगजीत सिंह इंग्लैंड से लौटते समय ढेर सारी किताबें और शोधपत्र वगैरह लेकर आए थे और वहाँ रहकर फ्रेंच भाषा भी सीख ली थी। इस तरह उनका पढ़ने का दायरा और भी बढ़ गया। वे उन दिनों लखनऊ में थे और लंदन में रहते हुए उन्होंने देखा था कि किस तरह डॉ0 हाल्डेन विज्ञान के विविध विषयों पर 'डेली वर्कर' नामक अखबार में नियमित स्तम्भ लिखते थे। लखनऊ में उनकी दोस्ती कृष्ण नारायण से हो गई, जोकि 'नेशनल हेराल्ड ट्रस्ट' के ट्रेजरार रह चुके थे। उन्होंने सुप्रसिद्ध संपादक चलपति राव से मिलवा दिया। इस तरह जगजीत सिंह ने 'नेशनल हेराल्ड' में साप्ताहिक विज्ञान स्तंभ शुरू कर दिया। उनके ये सरस लेख इतने लोकप्रिय हो गए थे कि लखनऊ यूनिवर्सिटी के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष प्रो0 डी.पी. मुकर्जी ने अपने विभाग में बोर्ड पर चेतावनी लिखवा दी थी कि 'अगर पिछले हफ्ते छपा जगजीत सिंह का लेख नहीं पढ़ा है तो अंदर घुसने की जरूरत नहीं।' उन्हें लखनऊ के शिक्षा संस्थानों तथा वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में विज्ञान संबंधी भाषण देने के लिए भी बुलाया जाने लगा, जैसे कि ब्रह्माण्ड के जन्म के बारे में।'

यहीं पर जगजीत सिंह ने अपनी पहली ललित विज्ञान संबंधी पुस्तक 'मैथेमैटिक्स एण्ड यू' लिखी। वे इसे 'पेंगुइन' से छपाना चाहते थे लेकिन कई बार संशोधनों के बाद भी पेंगुइन के समीक्षक ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि 'दूध भी अच्छा है और पेट्रोल भी लेकिन दोनों को मिलाया नहीं जा सकता'। जगजीत सिंह निराश नहीं हुए और उन्होंने लंदन और न्यूयार्क के दो प्रकाशकों को पाण्डुलिपि भेजी तो दोनों ने अस्वीकार कर दी। अंत में यह किताब प्रकाशक द्वारा बदले हुए शीर्षक 'मैथेमैटिकल आइडियाज– देयर नेचर एण्ड यूज' के शीर्षक से हार्डकवर में लंदन के हचिंसन ने और पेपर बैक में न्यूयार्क के डोवर पब्लिकेशंस ने छापी। इसके एक समीक्षक प्रो0 एल. रोजनहैड ने तो यहाँ तक लिख दिया कि इंग्लैंड में यह कानून बना दिया जाए कि 'गणित के सेकेंडरी स्कूल के हर अध्यापक को यह किताब पढ़नी होगी और जब तक इसकी विषयवस्तु के बारे में वह इम्तहान पास न कर ले, उसे गणित पढ़ाने की इजाजत न दी जाए।'

इस किताब की एक प्रति उन्होंने भौतिकीविद सर के.एस. कृष्णन के कहने पर पं0 नेहरू को भेंट की और उनसे गणित के बारे में खासी अच्छी चर्चा रही। नेहरू जी ने शंका प्रकट की कि 'मैं तो कैम्ब्रिज में केमिस्ट्री, जिओलाजी और बॉटनी का विद्यार्थी था, मेरी समझ में यह गणित की किताब कैसे आएगी ? जगजीत सिंह ने कहा कि यही इस किताब की कसौटी होगी। नेहरू जी ने एक पन्ना खोला–140, जिस पर गणित का कोई सूत्र लिखा था। उन्होंने दिखाया कि 'यह बिच्छू है'। जगजीत सिंह ने उनसे निवेदन किया कि आप शुरू से पढ़ेंगे तो यह बिच्छू नहीं लगेगा। नेहरू जी ने किताब रख ली और कहा कि तुम बंबई में रहते हो, एक कॉपी वहां एटॉमिक एनर्जी कमीशन के चेयरमैन होमी भाभा को भी दे देना, लेकिन भाभा के निजी सचिव ने उन्हें मिलने की बजाय डाक से किताब भेजने को कहा। किताब भेज दी गई, पर भाभा से मिलना तब नहीं हो पाया।

बंबई में एक भोज में जगजीत सिंह की भेंट 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के तत्कालीन संपादक एस. रामन से हुई। वे प्रसिद्ध गणितज्ञ रामानुजन पर एक लेख 'वीकली' के स्वतंत्रता विशेषांक में छापना चाहते थे।

बस इस तरह रामानुजन के बाद अन्य वैज्ञानिकों पर भी जगजीत सिंह के लेख छपे जो प्रकाशन विभाग से 'एमीनेण्ट इण्डियन साइंटिस्ट्स' नामक किताब के रूप में प्रकाशित हुए। मेरे मित्र और हिन्दी के प्रसिद्ध विज्ञान लेखक हरीश अग्रवाल ने इसका हिन्दी अनुवाद किया था। वह भी प्रकाशन विभाग ने प्रकाशित किया था।

सी.वी. रामन से मुलाकात

जब जगजीत सिंह स्थानांतरित होकर बंगलौर गए तो वहाँ सर सी.वी. रामन से मिलने गए। मुलाकात का समय तो नहीं मिला, फिर भी एक दिन जा पहुँचे। तब तक 'वीकली' में भारत के महान वैज्ञानिकों पर उनकी शृंखला छप चुकी थी, जिसमें रामानुजन के बाद रामन, कृष्णन, भाभा, साहा इत्यादि शामिल किए गए थे। जब जगजीत सिंह पहुँचे तो रामन साहब के इंस्टीट्यूट के गुलाब के बगीचे में एक माली काम कर रहा था। उसने सर रामन का कमरा दिखाया। रामन को पता चला कि केवल दर्शनों के लिए आए हैं तो कहा कि बड़ा विचित्र संयोग है कि तुम्हारे नाम वाले एक आदमी ने चार साल पहले 'वीकली' में मेरे बारे में एक लेख लिखा था। 'वह तो मैं ही हूँ' जगजीत सिंह बोले।

'कमाल है ! एक रेलवे मैन ने वह लेख लिखा ?' रामन बोले।

जगजीत सिंह बड़े हाजिर जवाब थे। झट से बोले, 'एक एकाउण्ट्स मैन को नोबेल पुरस्कार मिला, इससे ज्यादा अचरज की बात नहीं है यह।'

'तुमने क्यों लिखा ? क्या मेरे काम के प्रचार के लिए, मैं तो पहले से ही बहुत मशहूर हूँ।' रामन ने अपने खास अंदाज में झिड़का।

इस पर जगजीत सिंह का जवाब था, 'हुजूर मैंने आपके काम के प्रचार के लिए नहीं कुछ पैसे कमाने के लिए लिखा था, ताकि मैं स्कॉच–व्हिस्की की दो बोतलें खरीद सकूँ। अब बड़ी मँहगी हो गई है इन दिनों।'

उन्हें लगा कि अब तो रामन जरूर भगा देंगे। मगर इसके बाद बातचीत का सिलसिला जारी रहा। रामन इस बात पर नाराज हुए कि उस शृंखला में और वैज्ञानिक भी शामिल किए गए हैं, जिनमें से कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। फिर उन्हें अपना नोबल सम्मान का प्रशस्ति पत्र दिखाया, मेडल वगैरह दिखाए, जिन्हें वे सात तालों में रखते थे। एक ड्राअर से चाभी निकाल कर दूसरा ड्राअर खोला, फिर तीसरा, इस तरह न जाने कितने। अपने बारे में छपे लेख भी दिखाए जिनमें 'वीकली' का वह लेख भी शामिल था। बाद में चलते समय 'दृष्टि के क्रियाविज्ञान' पर छपे अपने पेपरों का पुलिंदा थमा दिया कि, 'उस लेख में मेरा बाद वाला यह काम भी शामिल करो, यह पहले से ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस पर मुझे दूसरा नोबेल पुरस्कार मिलना चाहिए।'

जगजीत सिंह ले तो आए, मगर उस काम के बारे में कुछ नहीं लिखा, क्योंकि उन्हें नहीं जँचा कि वह 'रामन इफेक्ट' से अच्छा काम था। बाद में जब उनकी किताब छपने लगी तो डॉ0 रामन ने श्रीमती इंदिरा गाँधी को पत्र लिखकर निवेदन किया कि उस किताब में से उनका विवरण हटा दिया जाए, लेकिन जगजीत सिंह अड़ गए कि, 'किताब मेरी लिखी हुई है, रामन की नहीं। या तो पूरी छपे या नहीं छपे।' तब उस समय सूचना मंत्रालय में ए.एन. झा सचिव थे। उन्होंने इंदिरा जी को रामन की सलाह की उपेक्षा करने को कहा। इस तरह पूरी किताब छपी। 'वीकली' में 1960 से 1965 के छपे लेखों के आधार पर ही 'कोस्मोलोजी' पर भी जगजीत सिंह की किताब 'माडर्न कोस्मोलोजी' छपी। 17 अप्रैल 1964 को यूनेस्को के डिप्टी डाइरेक्टर जनरल डॉ0 एम.एस. आदिशेषैया ने उन्हें सूचित किया कि उन्हें यूनेस्को के सन् 1963 के कलिंग पुरस्कार के लिए चुना गया है। वस्तुतः इसके लिए उनका नाम डॉ0 एम.एस. रंधावा ने भिजवाया था, जिनके साथ उनकी लिखी एक किताब 'सीएसआईआर' के प्रकाशन विभाग ने छापी थी। वे सीएसआईआर की मासिक पत्रिका 'साइंस रिपोर्टर' के संपादक मंडल के कई वर्षों तक अध्यक्ष भी रहे थे। उनके कलिंग पुरस्कार के प्रशस्ति–पत्र में लिखा है कि 'श्री जगजीत सिंह ने गणित, ताराभौतिकी, ब्रह्माण्डविज्ञान (खासतौर से दिक्काल के बारे में आइन्स्टाइन के सापेक्षवाद), सांख्यिकी और प्राकृतिक तथा कृत्रिम बुद्धि के बारे में 'इन्फार्मेशन थ्योरी' जैसे कि

मानव मस्तिष्क और कंप्यूटर इत्यादि के बारे में जनसाधारण की समझ बढ़ाने के लिए अनेक लेख तथा किताबें लिखकर विज्ञान को लोकप्रिय बनाने में योग दिया।'

सन् 1963 में जगजीत सिंह, नेहरू जी को अपनी किताब 'माडर्न कोस्मोलोजी' भेंट करने गए थे। नेहरू जी जानना चाहते थे कि क्या इस किताब से लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण बढ़ेगा। नेहरू जी ने यह भी कहा कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही भारत की सामाजिक समस्याएँ सुलझेंगी। बाद में 14 अक्टूबर 1973 के 'वीकली' में जगजीत सिंह ने 'साइंटिफिक टेम्पर एण्ड टेक्नोलोजी' शीर्षक से एक लेख लिखा था।

संघर्षमय जीवन

जगजीत सिंह का जीवन बड़ा संघर्षमय रहा। सरकारी नौकरी में रहते हुए लिखना–पढ़ना और अपनी बौद्धिक और सृजनात्मक प्रतिभा को बनाए रखना कितना कठिन होता है, यह हम सब जो इस प्रक्रिया से गुजर चुके हैं, अच्छी तरह जानते हैं। इंडियन साइंस राइटर्स एसोसिएशन से पहले साठादिक में साइंस राइटर्स एसोसिएशन आफ इंडिया (एसडब्ल्यूएआई) बनी थी। उसकी विचार गोष्ठियों में वे कई बार आए थे और बड़े हँसमुख थे और गहरे कटाक्ष करने में माहिर थे।

जगजीत सिंह जब साढ़े तीन साल के थे तो दायाँ पाँव सूज गया। जाड़े के दिन थे। माँ ने ऊनी मोजों पर रबड़ बैण्ड चढ़ा कर गरमाया था। रक्त प्रवाह बंद होने से पैर सूज गया। एक वैद्य ने मोजे और रबड़ बैण्ड उतारे, तव पाँव ठीक हुआ। फिर एक दिन पिता जी ने गरमा गरम खिचड़ी खिला दी, जिससे सारा मुँह जल गया। घर वाले तीन दिन तक झाड़ फूँक करते रहे, क्योंकि बालक जगजीत बोल भी नहीं पा रहा था। 3–4 दिन में जलन अपने आप ठीक हो गई। फिर पाँच साल की उम्र में कोई चार मीटर ऊँची दीवार से गिर गए। कंधे और दायीं बाँह की हड्डी टूट गई। फिर एक पहलवान से इलाज करवाया। छह साल के थे तो उनके स्वर्गीय बाबा के बड़े भाई ने संयुक्त परिवार से इनकी दादी को निकाल दिया और जगजीत सिंह समृद्ध परिवार की सदस्यता से निष्कासित होकर छोटे घर में गरीबी में रहने लगे। हुआ यह था कि दादी ने अपने जेवर पहचान कर उठा दिए थे और उन पर चोरी का इल्जाम लगाया गया। सन् 1918 में वे हिन्दू महासभा हाईस्कूल में दाखिल हुए, जहाँ उनकी फीस माफ कर दी गई।

मैट्रिक पास करने के बाद उनकी माँ के मामा ने उनके लिए क्लर्क की नौकरी ढूँढ ली थी, लेकिन तभी उन्हें 20 रुपये महीने का वजीफा मिलने की खबर आयी। क्लर्की में भी यही वेतन मिलता था, इसलिए बजाय नौकरी के कॉलेज में दाखिल हो गए। उन्हीं दिनों उनकी मामी ने अपनी पहचान के एक परिवार से उनकी सगाई कर दी। शादी की तारीख भी तय हो गई। उनके स्कूल में मदन मोहन मालवीय आए थे जिन्होंने बच्चों से बाल–विवाह न करने के लिए कहा था। जगजीत सिंह घर से भाग लिए मगर रेलवे स्टेशन पर पकड़े गए और घर लाकर फेरे डाल दिए गए। इसके बाद सास ससुर बेटी के साथ सिंगापुर चले गए थे, इसलिए विदा दस साल बाद हुई। तब तक जगजीत सिंह कॉलेज की पढ़ाई भी पूरी कर चुके थे और छुट्टियों में एक पड़ोसी कन्या और एक विवाहिता से प्रेम का पाठ भी पढ़ चुके थे।

'रेमिनिसेंसेज ऑफ ए मैथेमैटीशियन मांक' (एक भटके गणितज्ञ के संस्मरण) नाम से उन्होंने अपने जीवन की एक बड़ी रोचक कहानी लिखी है, जिसका हिंदी में अनुवाद 'विज्ञान प्रसार' को छापना चाहिए। 27 सितम्बर 2002 को 90 वर्ष की आयु में यह प्रतिभाशाली विज्ञान लेखक संसार से विदा ले गया। उनके एकमात्र पुत्र जितेन्द्र सिंह मर्चेन्ट नेवी से रिटायर होकर नई दिल्ली में न्यू फ्रेंड्स कालोनी में रहते हैं।

परिवार में हम लेखकों की अक्सर 'घर का जोगी' वाली हालत होती है। अतः जगजीत सिंह जी के निधन का समाचार केवल संबंधियों और पारिवारिक मित्रों को ही मिला। वह तो उनके मित्र और योजना आयोग के पूर्व सदस्य डॉ0 तरलोक सिंह का भला हो

शेष पृष्ठ 40 पर ....

कृषि

कृषकों को कीटनाशी विषाक्तता की जानकारी आवश्यक

रामचन्द्र मिश्र

खाद्य पदार्थों में आए दिनों कीटनाशक रसायनों की धरपकड़ होने पर अथवा इनसे विषघातक दुर्घटनाएँ होने पर जनता में आक्रोश या भावावेश पैदा होता है, और बाकी समय उदासीनता या लापरवाही अथवा वैज्ञानिक जानकारी के अभाव में भाग्यवादी रुख बना रहता है। फलतः कीटनाशी दुर्घटनाओं का दुश्चक्र कायम रहता है। यह विषय भावात्मक नहीं बल्कि वैज्ञानिक है जिस पर किसानों, श्रमिकों, सफाई कर्मियों, गृहणियों आदि को मुख्य व्यावहारिक जानकारी दिए बगैर कीटनाशक रसायनमुक्त एवं सुरक्षित खाद्य व पेय पदार्थ पाने की आशा निरर्थक होगी। हाल ही में बोतलबंद खनिज जल में कीटनाशक रसायनों की उपस्थिति की पहचान पूरी समस्या का मात्र अल्पांश है। जागरूक जनता अब पूछने लगी है 'अरे भइया ! हमार रोजाना की जिंदगी कीटनाशी–आतंकवाद से कइसे बचे ?'

सर्वव्यापी कीटनाशी

विचारणीय है कि भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में फसलों, फल, साग–सब्जी, मलेरिया के उन्मूलन, घरेलू कीटनिवारण, स्वच्छता सुनिश्चित करने, बीमारियों की रोकथाम करने और सामान्य संक्रमण व संदूषण से बचाव की खातिर डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, ड्राई एल्ड्रिन, एंड्रिन, मैलाथियन, पैराथियन, मेथॉक्सिक्लोर आदि सैकड़ों कीटनाशक रसायनों का बहुधा प्रयोग असावधानी से खेत–खलिहानों, घरों, कार्यालयों, अस्पतालों, सार्वजनिक स्थलों आदि पर सभी ठिकानों पर धड़ल्ले से अप्रशिक्षित लोगों द्वारा किया जा रहा है। फलतः परोक्ष–अपरोक्ष रूप से खाद्यान्न, फल–सब्जी, दूध, मांस–मछली, हवा, जल आदि सभी दैनिक उपयोग के पदार्थों तथा माँ के स्तन के दूध में भी कीटनाशी अवशेषों की घुसपैठ होती रहती है। इनकी बदौलत धीमे और घातक विषाक्त प्रभाव, बीमारियाँ, आनुवंशिक क्षति आदि हावी होते हैं। कीटनाशी विषाक्तता से पशु–पक्षी भी कुप्रभावित हैं और कितनों की तो मृत्यु हो जाती है।

कीटनाशी रसायन सर्वव्यापक बनते जा रहे हैं। जापानियों के निवालों में सर्वाधिक कीटनाशी अवशेष होते हैं जिनकी बदौलत अमरीकी खानपान के साथ भी रंग में भंग है। अब इन देशों में हुकुम किया जा रहा है कि कीटनाशक रसायनों की छुट्टी कराओ, जैव–कीटनाशियों को अपनाओ, साँपो की खेती बढ़ाओ। वस्तुतः कीटनाशी अवशेषों की खाद्य में बढ़ती पहुँच के लिए कृषक सर्वाधिक जिम्मेवार हैं इसलिए उन्हें विशेषतः भारतीय संदर्भ में संबंधित वैज्ञानिक जानकारी देना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

दूरगामी क्षति

भारत में हर आदमी के भोजन के साथ रोजाना लगभग 0.27 मिलीग्राम कीटनाशी पेट में दाखिल होता है। चतुर किसान फल और सब्जी को ज्यादा दिनों तक बिना सड़े–गले बेचने के लिए कीटनाशियों की प्रचुर मात्रा पौधों में डालते हैं। मुनाफा प्रेरित दुकानदार अनाजों में बहुधा घटिया या ज्यादा विषाक्तता के कीटनाशी झोंकते हैं। आम जनता बहुधा बेखबर है या भाग्याधीन रहती है।

कीटनाशियों की असुरक्षित मात्रा के कुप्रयोग के चलते इनके तुरंत और दूरगामी प्रभाव के रूप में कैंसर, रक्त धमनियों के रोग, दिल की बीमारी, जनन क्षमता में गिरावट, बाँझपन, कई आनुवंशिक क्षति, उदरस्थ शिशु में विकृति, नाड़ी की क्षुब्धता, विक्षिप्तता आदि खराबियाँ आती हैं। कीटनाशियों की खासियत यह है कि ये शरीर के वसायुक्त अंगों में जमा होते हैं। फलतः जिगर, गुर्दा, गल–ग्रंथि, अधिवृक्क आदि पर अधिकतम कुप्रभाव पड़ते हैं। दुष्चक्र यों बढ़ता है कि शरीर के कमजोर होने पर जब एकत्र वसा खपने लगती है तो कीटनाशी विषाक्तता को सभी अंगों में फैलने का दरवाजा खुल जाता है। अतः मधुमेह के रोगी पर कीटनाशी प्रभाव शीघ्र, सर्वाधिक और घातक हो सकता है।

आर्गेनो–फास्फोरस परिवार के कीटनाशी (कारबैरिल/प्रैटबिआन) के प्रभाव में शरीर में बेचैनी, ऐंठन, चक्कर, दौरा आदि आते हैं। डाइएल्ड्रिन, जो त्वचा से प्रवेश करने की हालत में डी.डी.टी. की अपेक्षा चालीस गुना अधिक असर डालता है, मूर्च्छा पैदा करता है, जबकि मुर्गी और बतख पर साठ गुना ज्यादा असर पड़ता है। मुख्यतः तीन प्रकार के कीटनाशियों– क्लोरीनेटेड (डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, डाइएल्ड्रिन, एंड्रिन), आर्गेनिक फास्फेट (पैराथियन, मैलाथियन) और (कारबैरिल, एल्डीकॉर्ब, कार्बोफ्युरॉन) में से अंतिम श्रेणी के कीटनाशी जानलेवा खतरों से भरे हैं जिनका दूसरा नाम है भोपाल गैस दुर्घटना यानी मेथिल आइसोसाइनेट (गैस) के आकस्मिक रिसाव से पैंतीस हजार बेगुनाह नागरिकों की अकाल मृत्यु, तथा दूरगामी दुष्प्रभाव।

संभावित विकल्प

भारत में कीटनाशियों के सुरक्षित प्रयोग का नियमन केंद्रीय कीटनाशी बोर्ड द्वारा किया जाता है किंतु इस संबंध में अधिकतर जानकारी गोपनीयता की आड़ में है। प्रजातांत्रिक विधियाँ ही कीटनाशी नियमन प्रक्रिया को प्रकाश में ला सकती हैं और सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहायक हो सकती हैं। दूसरी आवश्यकता जैविक सुरक्षात्मक कीट नियंत्रण विधि को व्यावहारिक बनाने की है। नाशक कीटों के नियंत्रण के लिए कीटनाशक रसायनों के निरंतर प्रयोग से प्रदूषण के अलावा गौण नाशक कीटों का प्रमुख नाशक कीटों में परिवर्तन होता है, चिचड़ियों या माइट की आबादी बढ़ती है और नाशक कीटों में कीटनाशियों की सामान्य या ज्यादा मात्रा के प्रति प्रतिरोध बढ़ता है। अतः कीटनियंत्रण का सर्वोत्तम तरीका है प्राकृतिक शत्रुओं का इस्तेमाल और इसके लिए इनका संतुलित संवर्धन आवश्यक है। जानी–मानी 8,20,000 कीटजातियों में से 15 फीसदी परजीवी हैं। इनके प्राकृतिक शत्रुओं को खोजना, एकत्र करना और पालने–पोसने के लिए यह जरूरी है कि इनके भौगोलिक वितरण, जीवन चक्र, प्राकृतिक परिवर्तनों आदि के बारे में क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सूचना का एकीकरण हो। साथ ही कृषि–क्रियाओं (जुताई, निराई, गुड़ाई आदि) के अनुकूल परिवर्तित विधियों पर समन्वित सूचना का अद्यतन विकास एवं प्रसार आवश्यक है जो नाशक कीटों को हटाने और प्राकृतिक शत्रुओं को बचाने में सहायक हो। इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा भूमण्डलीय जैविक कीट नियंत्रण सफल होने पर ही कीटनाशक रसायनों पर निर्भरता कम हो सकेगी और इनके खतरों से बचा जा सकेगा। इस जैविक विकल्प के व्यावहारिक होने तक कीटनाशक रसायनों का प्रयोग बंद नहीं किया जा सकता, बल्कि प्राप्त सुरक्षित विधियों के जरिए नियंत्रित किया जा सकता है।

स्वतः सुरक्षा

आश्चर्यजनक किंतु खेदपूर्ण तथ्य यह है कि चुने हुए आवश्यक कीटनाशक रसायनों के सामान्य सुरक्षित प्रयोग की विधियाँ और कीटनाशी अवशेषों के निराकरण की दैनिक आवश्यकताएँ प्रायः सरल होने के बावजूद अशिक्षित ही नहीं, शिक्षित उपयोगकर्ताओं में इनकी जानकारी नहीं है जो स्वतः सुरक्षा हेतु अपरिहार्य है। इस कार्य हेतु कार्रवाई के बिंदु निम्नांकित हो सकते हैं :

1. केंद्रीय कीटनाशी बोर्ड, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, राष्ट्रमंडल जैविक नियंत्रण ब्यूरो आदि द्वारा अब तक विकसित सूचना के सरलीकरण द्वारा 'किसानों के लिए' कीटनाशी रसायनों के सुरक्षित प्रयोग की निर्देशिका तैयार करने की सर्वोपरित

आवश्यकता है। विज्ञान परिषद् प्रयाग इस प्रस्तावित निर्देशिका का एक प्रारूप तैयार कर अधिकारिक प्रकाशन हेतु सरकार को सौंप सकती है जो सामाजिक–राष्ट्रीय उत्तरदायित्व के वहन में लोकप्रिय विज्ञान लेखन के महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित कर सकती है।

प्रस्तावित निर्देशिका के अंतर्गत विविध प्रयोजनों हेतु उपयुक्त कीटनाशियों व उपकरणों का चयन, उपयोग की सुरक्षित विधि, कीटनाशी अवशेषों से छुटकारा, दुर्घटना या विषाक्त प्रभाव होने पर प्राथमिक चिकित्सा और स्वास्थ्य की नियमित जाँच आदि विषयों पर सरल, स्पष्ट और व्यावहारिक जानकारी शामिल की जा सकती है।

2. समय समय पर निर्दिष्ट एवं प्रतिबंधित कीटनाशी रसायनों की अद्यतन तालिका जारी करना और विविध उपयोगकर्ताओं तक प्रचारित करना कीटनाशी सुरक्षा की पहली सीढ़ी के रूप में लिया जाना चाहिए। प्रतिबंधित कीटनाशियों का निर्माण, आयात, विपणन आदि न हो, इस संबंध में व्याप्त ढिलाई को तुरंत दूर किया जाना चाहिए।

विशेषतः बढ़ते पौधों पर सर्वांगी कीटनाशी छिड़काव और भण्डारित अन्न को फफूँदनाशी रसायनों (मेथिल मर्करी यौगिक) से परिरक्षित करने पर सख्ती से रोक लगानी होगी। ये स्थितियाँ विषाक्तता को सुनिश्चित करती हैं।

3. खाद्य एवं पेय पदार्थों में कीटनाशी अवशेष का नमूना–परीक्षण करना एक अनिवार्य कानूनी कार्रवाई के रूप में प्रचलित किया जाना चाहिए। फिलहाल कुछ अर्द्ध/गैर सरकारी संगठन इस कार्य को ऐच्छिक रूप से करते हैं।

संगठित स्तर पर अन्न–भण्डारण एवं विपणन के दौरान हानिकारक कीटनाशी अवशेषों की उपस्थिति पाए जाने पर संदूषित या संसर्गित माल को उपयुक्त रूप से उपचारित कर निरापद बनाने की कानूनी व्यवस्था नियमित रूप से लागू की जानी चाहिए।

4. उपयोगकर्ता के स्तर पर कीटनाशियों से सुरक्षा के उपाय करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जो जनशिक्षा द्वारा ही संभव हो सकता है। कुछ व्यावहारिक निर्देश निम्नांकित हैं :

4.1 पीसने, पकाने या कच्चा खाने के पहले अन्न को अच्छी तरह पानी से धोना व सुखाना चाहिए। रोटी को प्राथमिकता दे क्योंकि रोटी पकाने के दौरान 80 फीसदी कीटनाशी खत्म हो जाता है। तैयार आटा की जगह स्वयं पिसाया आटा इस संबंध में ज्यादा विश्वसनीय है।

4.2 पेयजल की सुरक्षा उपचार की विधियों द्वारा शोध संयंत्रों के स्तर पर सुनिश्चित की जाती है। विविध स्रोतों के नमूनों में कीटनाशी रसायनों की उपस्थिति की जाँच फिर भी आवश्यक है। इसके लिए नगर निगम, स्वास्थ्य विभाग, विशिष्ट संस्थानों, स्वयंसेवी संगठनों के उत्तरदायित्व का अचूक नियमन होना चाहिए।

पेयजल के अलावा दुग्ध, फलों के रस, नीरा, बोतलबंद पेय पदार्थों आदि की परीक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं है। कीटनाशी रसायन से संदूषित खाद्य लेने पर स्त्रियों के स्तन के दूध में कीटनाशी जमाव की मात्रा खून में फैली मात्रा से कहीं ज्यादा होती है। अतः स्तनपान वाले शिशुओं में कीटनाशी विषाक्तता रोकने पर विशेष ध्यान दें।

4.3 बूचड़खाने में लटका कर रखे गए गोश्त से मक्खियाँ आदि दूर रखने के लिए उस पर कीटनाशी छिड़काव किया जाता है। ऐसे गोश्त को न खरीदें और ऐसे छिड़काव को रोका जाए।

गोश्त की अपेक्षा अंडों में कीटनाशी होने की संभावना कम होती है। गोश्त, मछली और दूध के वसायुक्त अंशों में ज्यादा कीटनाशी घुला रहता है जिसे आसानी से अलग किया जा सकता है।

गुर्दा, कलेजों और अग्न्याशय के हिस्सों में कीटनाशी सर्वाधिक मात्रा में जमा होता है, उसको न खाएँ।

4.4 एल्ड्रिन, जो डी.डी.टी. के मुकाबले 300 गुना ज्यादा प्रभावी है, उसके प्रयोग पर मनाही के बावजूद धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है। एस्प्रीन की एक टिकिया के बराबर की एल्ड्रीन 400 मुर्गियाँ, मोर अथवा अन्य चिरई–चुरंग को चारों खाने चित्त करने में पर्याप्त होता है। जाने–अनजाने एल्ड्रिन का प्रयोग न करें।

4.5 फल और सब्जी, खासकर अंगूर, सेब, टमाटर, गोभी आदि पर खनिज तेल या जल में घुला कीटनाशी अनियंत्रित मात्रा में छिड़का जाता है जो मात्र पानी से धोने पर अलग नहीं होता। इन चीजों को ऐसिटिक अम्ल यानी सिरका या खाने के सोडा के 5 फीसदी जलीय घोल में धोने पर कीटनाशी पूरी तरह घुल जाता है। फल सब्जी धावक जैसे व्यापारिक उत्पाद भी बाजार में आ गए हैं जो अपेक्षाकृत मँहगे हैं, यद्यपि ये भी सिरका, सोड़ा आधारित है। खासकर शहरों से प्राप्त फल सब्जी को ऐसे सोड़ा, सिरका के घोल से धोए बगैर न खाएँ।

4.6 घरेलू कीटनाशी उत्पाद जो सीधे काक्रोच, चींटी, मक्खी, आदि पर छिड़कने के वास्ते बनाए गए हैं उन्हें पूरे घर में हवा के सामान्य छिड़काव के लिए प्रयोग न लाएँ, अन्यथा धीमी विषाक्त क्रिया से शिशु, वृद्ध व बीमार सर्वाधिक कुप्रभावित हो सकते हैं।

5. कीटनाशियों का लापरवाही से प्रयोग करने पर यदि विषाक्त दुर्घटना हो जाए तो प्रथम उपचार हेतु पहले रोगी के संदूषित कपड़े निकाल लें, ठीक हालत होने पर वमन कराएँ (नमक का तनु घोल पिलाएँ), त्वचा और आँखों को साबुन और पानी से धोवें और कपड़े से पोंछें, कृत्रिम श्वास दें और चिकित्सक की मदद लें।

याद रहे कि कीटनाशी शरीर पर अचूक कुप्रभाव डालने में सक्षम होते हैं। उचित सावधानी बरतने और आवश्यक साधनों की मदद से कीटनाशियों से संस्पर्श और इनका अंतःश्वसन पूरी तरह रोका जा सकता है। समुचित वैज्ञानिक जानकारी, निर्देशों के परिपालन और सतर्कता द्वारा कीटनाशी सुरक्षा की कुंजी हासिल की जा सकती है।

2/203, देवदर्शन
डोंगरी पाड़ा, घोड़बंदर मार्ग
ठाणा–400601

पृष्ठ 36 का शेष ....

कि वे इस दुखद घटना का जिक्र 'इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी (इन्सा)' के कार्यकारी सचिव श्री के. एस. साहनी से कर बैठे। श्री साहनी ने मुझे बताया। तब हमने 10 जनवरी 2003 को सायंकाल 4 बजे उनकी स्मृति में एक सभा का आयोजन 'इन्सा' के समिति कक्ष में किया। इसकी अध्यक्षता डॉ0 नरेन्द्र सहगल ने की जो 'राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद्' (विज्ञान मंत्रालय) के संस्थापक अध्यक्ष रहे हैं और विज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए स्वयं कलिंग पुरस्कार से सम्मानित हो चुके हैं। उन्होंने बताया कि जगजीत सिंह जी को उन्होंने विज्ञान लोकप्रियकरण के राष्ट्रीय पुरस्कार के निर्णायक मण्डल में कई वर्ष तक रखा था और तभी वे उनके संपर्क में आए। मैंने उनके जीवन के लेखन संबंधी प्रसंग सुनाए।

उनके पुत्र और पौत्री ने भी उनके संस्मरण सुनाए। पौत्री शालिनी ने बताया कि बाबा बहुत हँसमुख थे और हमेशा नई नई बातें बताया करते थे। अवकाश पाने के बाद उनका जीवन बड़ा नियमित था। एक घंटा सुबह और एक घंटा शाम को टहलना और हलका–फुलका भोजन करना। वे न तो किसी बात पर नाराज होते थे और न डाँटते–फटकारते थे। उनके मित्र डॉ0 तरलोक सिंह का आलेख डॉ0 पी.के. मुखर्जी ने पढ़ा जिसमें उनकी पूरी जीवनी दी गई थी। यह 'इंडियन एसोसिएशन ऑफ सोशल साइंस इंस्टीट्यूशंस' के जर्नल में प्रकाशित होगा। जगजीत सिंह जी के चित्र पर माल्यार्पण और पुष्प अर्पित करके सभी ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की, लेकिन किसी भी समाचार पत्र में आज तक कोई खबर नहीं छपी। क्या विज्ञान लेखक होना इतना बुरा है ?

अध्यक्ष,
भारतीय विज्ञान लेखक संघ
457, हवा सिंह ब्लाक, खेल गाँव,
नई दिल्ली–110049

कुत्तों में मानसिक स्तर

डॉ0 सुनील कुमार एवं डॉ0 भुवनेश कुमार

कैलाश मानसरोवर के 12वें दस्ते के 60 तीर्थयात्री, 45 पोर्टर तथा 24 खच्चरों के लिए मालपा, जनपद पिथौरागढ़ (उत्तरांचल) में दिनांक 18 अगस्त 1998 की रात्रि एक सामान्य रात्रि थी। परन्तु रात्रि में लगभग 2 बजे वहाँ पर कुत्तों के रोने से एक विचलित कर देने वाली भयावह स्थिति उत्पन्न हो रही थी तथा कुत्तों के रोने से वहाँ बँधे खच्चरों में भी हलचल मची थी। बँधे हुए कुछ खच्चर रस्सियों को चबाकर काटने में लगे थे तथा कुछ खच्चर रस्सी तोड़कर वहाँ से भाग चले। रात्रि के गहन अंधकार तथा तेज होती बारिश में कुत्तों द्वारा रोकर दिए गए संकेत को जानवर तो समझ गए पर मानव न समझ सके और इसके कुछ ही देर बाद तेज बारिश के कारण होने वाले भूस्खलन से मालपा में सभी तीर्थयात्रियों, पोर्टरों तथा बचे हुए खच्चरों की कब्रगाह बन गई। उक्त घटना से कुत्तों की संकेत ग्रहण या सम्प्रेषण की क्षमता के बारे में कोई दो राय नहीं हो सकती कि वहाँ के कुत्तों को आने वाले खतरों का आभास शायद पहले से ही था।

कुत्ता एक ऐसा सामाजिक प्राणी है जो गाहे–बेगाहे आपको अपने घर या मुहल्ले में अवश्य मिल जाता है। क्या आप जानना चाहेंगे कि यह प्राणी कब हमारे अस्तित्व का एक अंग बन गया अब यह पता चला है कि मानव विकास के साथ–साथ हजारों वर्षों पूर्व से यह मानव का एक अभिन्न मित्र बन गया है। कुत्तों की पालतू प्रजातियाँ काफी सुन्दर दिखाई पड़ती हैं। परन्तु सभी व्यक्ति कुत्तों की दोस्ती पसन्द नहीं करते। इन्हें इस भेड़ियानुमा जीव पर भरोसा नहीं हो पाता कि क्या पता कब ये उछल कर उनकी गर्दन पकड़ ले।

हाल ही के वर्षों में कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे पता चलता है कि कुत्ते तथा आदमी का सहअस्तित्व किसी भी जानवर के सहअस्तित्व से काफी पुराना है। उत्पत्ति विज्ञान के प्रमाणों के अनुसार जब मानव गुफाओं में रहता था तथा आवाज के नाम पर गुर्राता था तभी से उसने कुत्तों को पालना शुरू कर दिया था। शोधकर्ताओं के अनुसार कुत्तों को प्राकृतिक वातावरण मानव परिवार या अन्य सामाजिक संस्थाओं के बीच ही मिलता है।

मानव तथा कुत्तों का विकास साथ साथ होने के कारण, कुत्तों में तथा मानव में, सोचने के क्रम में आश्चर्यजनक समानताएँ होती हैं। कुत्तों में, मानव समाज के मस्तिष्क की भावनात्मक तथा आदेशात्मक संवेदनाओं को पहचानने की क्षमता होती है, इसी कारण वे मानव समाज के ढाँचों तथा नियमों को याद कर उनका पालन भी करते थे। ईओत्बोस लोरैन्ड विश्वविद्यालय में विल्लोस सेनाई ने मानव तथा कुत्तों के पिल्लों के बीच विकसित होने वाले सम्बन्धों पर कार्य किया। उन्होंने पाया कि मालिक तथा कुत्तों के बीच जो आकर्षण व बन्धन होता है वही गुण उनके पिल्लों में भी अपने आप (सेलेक्टिव ब्रीडिंग के उपरान्त) जीन के माध्यम से पहुँच जाते हैं। शोधकर्ताओं ने यह

जानने का प्रयास किया कि जो संबंध मानव तथा उनके बच्चों में होता है वही संबंध (आकर्षण/बन्धन) कुत्तों व उनके पिल्लों में भी होता है। परीक्षणों में पाया गया कि मालिक के प्रति जो आकर्षण/बंधन कुत्तों में होता है वह उनके पिल्लों में भी होता है अर्थात् यह व्यवहार विकास के दौरान पालतूकरण का ही परिणाम है।

एक पीढ़ी से (कुत्तों से) दूसरी पीढ़ी तक (पिल्लों में) बंधन बनाने की क्षमता, जीन स्तर पर एक छाप की तरह स्थानान्तरित होती है। 6 से 12 सप्ताह के पिल्लों को यदि मानव सम्पर्क में रखा जाए तो पिल्लों में बंधन बनाने की क्षमता अपनी प्रजाति (कुत्तों की तरह) की तरह अपने आप विकसित हो जाती है।

मानव के प्रति कुत्तों का यह मानसिक आकर्षण या बंधन कभी कभी उनको बेवकूफ भी साबित करता है। मिशिगन विश्वविद्यालय के हैरीफ्रेंक ने एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने भेड़ियों को आज्ञा सूचक शब्द जैसे 'बैठ जाओ' का आदेश देकर पालने का भरसक प्रयास किया, परन्तु भेड़ियों ने पालन नहीं किया। परन्तु उन्हीं भेड़ियों ने अन्य भेड़ियों को देखकर पिंजरे के दरवाजे खोलने की जटिल प्रणाली आसानी से सीख ली। प्रशिक्षित कुत्ते एक साल तक लगातार देखने के बावजूद भी यह दरवाजा खोलने की प्रणाली में सक्षम नहीं हो सके। इससे साबित हुआ कि 'पालतूकरण प्रक्रिया' के दौरान कुत्ते आज्ञाकारी एवं प्रशिक्षित तो बन गए पर संकट के समय आवश्यक उपाय करने वाली क्षमता खो बैठे।

कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि जितनी मानसिक क्षमता या बुद्धिमत्ता किसी विशिष्ट प्रजाति के जंगली जानवर में होती है उतनी उसी प्रजाति के पालतू जानवर में नहीं होती। झुंडों में रहकर शिकार करने की मानसिक क्षमता किसी भी मुहल्ले के कुत्तों में अपने जंगली पूर्वजों की तरह ही होती है परन्तु पालतू कुत्ते झुंड में रहकर शिकार करने की क्षमता खो देते हैं। कुत्तों में किसी भी उद्देश्य को समझने की क्षमता बन्दरों के बराबर ही होती है तथा किसी भी जानी अनजानी जगह पर, दूसरा रास्ता ढूँढ लेने के लिए मानसिक नक्शा मुहल्ले के कुत्ते आसानी से तैयार कर लेते हैं। पालतू कुत्तों की समस्या का निदान ढूँढने की मानसिक क्षमता कम होने का कारण मुख्यतः उनका तथा मालिक का आपसी संबंध है अर्थात् मालिक तथा कुत्ते के बीच जितना गहरा प्यार या मानसिक आकर्षण होगा उतना ही वह कुत्ता सामाजिक तौर पर विश्वसनीय बन जाएगा परन्तु उसके स्वतन्त्र विचार तथा कार्यकलाप समाप्त हो जाएँगे। अब यह कुत्ता पूर्णरूप से मालिक के हाव भाव, विचारों तथा संकेतों का पालन करेगा। यहाँ तक कि वह मालिक के आँखों के इशारों को पढ़कर आदेश ले लेता है। इस विचार को परखने के लिए कुत्तों को एक समस्या दी गई तथा यह भी जाँचा गया कि उनके मालिक उन्हें कितना प्यार करते थे। समस्या में, कुत्तों को इनाम के तौर पर मिले खाने को एक तश्तरी में खींचना था जो कि तारों की बाड़ के पीछे रखी थी। इस तश्तरी में एक हैंडिल भी लगा था जिसे कुत्ते पकड़ कर खींच सकते थे। प्रयोग से पता लगा कि जो मालिक अपने कुत्तों को अपने बिस्तर आदि में बिठाते थे तथा अत्यधिक प्यार करते थे वे कुत्ते बाड़ के पार रखी तश्तरी नहीं खींच सके जबकि कम प्यार करने वाले कुत्ते तश्तरी खींचकर खा गए परन्तु समस्या तब सुलझी जब असफल कुत्तों को उनके मालिक ने खाना खींचने के लिए प्रेरित किया तथा खाने के लिए आदेश दिया। इससे जाहिर है कि मालिक के घनिष्ठ संबंध रखने वाले कुत्ते बुद्धू भी नहीं थे लेकिन उनका स्वभाव 'निर्भर' बन गया था तथा समस्या का निदान ढूँढने में उन्हें आदेश की आवश्यकता पड़ती थी। ऐसा नहीं था कि वे समस्या को नहीं समझते थे।

नियमों का पालन

पालतूकरण की प्रक्रिया ने कुत्तों की जन्मजात क्षमताओं को बढ़ाया ही है न कि घटाया। कोई भी व्यक्ति किसी भी विशिष्ट कुत्ते का चुनाव करके यदि उससे घनिष्ठ संबंध बनाता है तो वह कुत्ता अपने मालिक के लिए अत्यन्त ही नम्र हो जाता है। वह कुत्ता अपने पिता की तरह (जेनेटिक दृष्टिकोण से) नियमों का पालन करने तथा मानव के सामाजिक वातावरण में

अपने को व्यवस्थित करने के लिए आसानी से तैयार हो जाता है। कुत्ते बिना किसी विधिवत् प्रशिक्षण के पूर्णतः सामाजिक बन जाते हैं तथा समाज के नियमों को देखकर आसानी से उन्हें सीख लेते हैं। कोलैरेडो विश्वविद्यालय के मार्क बीकांफ के अनुसार सभी जानवर आपसी खेल के माध्यम से अपनी प्रजाति की नैतिकताओं के नियम व कायदे सीखते हैं। वे 'सहनशीलता' के आधारभूत सिद्धान्त के नियम सीखते हैं जिसमें मालिक के साथ खेलते हुए मालिक के हाथ चबाने की प्रक्रिया तथा दुश्मन जानवर पर आक्रमण के समय कैसे चीरफाड़ करनी है उसका अन्तर उसे पता होता है। पाया गया कि कुत्तों की मानसिक उम्र बढ़ी है। कुत्तों के पिल्लों में भेड़ियों के बच्चों की अपेक्षा, खेलते समय, काफी विभिन्नताएँ पायी गईं जो कि शायद उनको अपने पिता की 'जीन्स' द्वारा मिलीं जो कि उनके पिता ने मानव के साथ रहकर सीखी थी। इसीलिए उनके बच्चे भेड़ियों की बच्चों की अपेक्षा ज्यादा अनुभवी साबित हुए।

मानव के साथ साथ कुत्तों की मानसिक क्षमता भी बढ़ी है। कुत्ता अपने मालिक द्वारा दिए गए सूक्ष्म संकेत पर भी छुपे खाने को ढूँढ़ निकालता है। ऐसा प्रदर्शन चिम्पांजी अथवा रीसस बन्दर भी नहीं कर पाते क्योंकि वे छिपे भोजन से 20 सेमी0 से ज्यादा की दूरी होने पर भोजन नहीं ढूँढ पाते। कुत्ते संकेत तथा भोजन में दूरी होने के बावजूद भी, भोजन ढूँढ निकाल लेते हैं। परन्तु मालिक के आदेश मिलने पर ही वे यह कार्य शुरू करते हैं। आदेश मिलने से पूर्व ही कुत्ते मालिक के हावभाव/संकेत पढ़कर भोजन तथा खाने के बीच 'खोजी रेखा' खींच लेते हैं परन्तु फिर भी आदेश की प्रतीक्षा करते हैं अर्थात् कुत्ते समझ लेते हैं कि मालिक उससे कुछ कहना चाह रहा है।

कुत्तों द्वारा संकेत प्रेषण

वैज्ञानिकों ने यह जानने का भी प्रयास किया है कि क्या कुत्ते भी मालिक को संकेत दे सकते हैं। उन्होंने पाया कि मालिक का आदेश मिलने पर जब कुत्ते ने भोजन ढूँढ लिया तो भौंक कर मालिक को भोजन छिपे होने का संकेत भेजा तथा एक बार मालिक तथा एक बार भोजन पर टकटकी लगाकर देखा जिससे यह पता लगा कि वह मालिक के अगले आदेश की प्रतीक्षा में है। कुत्ते के इस व्यवहार को 'दिखाना' कहा गया है। इसे उच्च मानसिक प्रक्रिया भी कहते हैं जिसे मानव तथा बन्दरों के बच्चों की तरह कुत्ते भी कर सकते हैं। स्तनपायी जानवरों की यह सामान्य क्षमता है। परन्तु कुत्ते इस प्रक्रिया में पारंगत हो गए हैं।

संकेत समझने की क्षमता

शोधों में पाया गया है कि वयस्क पालतू कुत्ते मानव द्वारा बोले गए लगभग 7 से 80 शब्दों को समझ लेते हैं यदि उनके साथ संकेत भी दिए जायें। कुत्तों की समझ प्रक्रिया हमारी समझ प्रक्रिया से थोड़ी अलग होती है। हम शब्दों को चिन्हों के रूप में (अ,आ,इ,ई या ए.बी.सी.डी.) प्रयोग करते हैं जबकि कुत्ते शब्दों के संकेतों के रूप में (जैसे बैठने का आदेश उँगली नीची करके दिया जाए) कुत्ते किसी भी बोले गए लम्बे वाक्य में से अपने मतलब के शब्द को पकड़ लेते हैं। जैसे अगर किसी कुत्ते को घुमाने हेतु 'चलो' का संकेत नियत किया गया है तो किसी भी वाक्य में 'चलो' आने पर कुत्ता उस शब्द संकेत को पकड़ लेगा तथा घूमने जाने को तैयार हो जाएगा।

अधिकतर शोधकर्ता मानते हैं कि जो जानवर शीशे में अपनी पहचान कर लेते हैं वह 'स्वयं सचेत' कहलाते हैं तथा अपनी व अन्य प्रजाति के लिए सहानुभूति, घृणा आदि की भावनायें रखते हैं। परन्तु अपने दर्द का एहसास अपने मित्र जानवर को नहीं करा पाते। कुत्ते उपरोक्त 'दर्पण परीक्षा' में पास नहीं हो सके हैं एवं इसी कारण 'स्वयं सचेत' श्रेणी में नहीं आते। फिर भी दूसरे मित्र आदि पर पड़े खतरे आदि का अन्दाजा लगा लेते हैं। अगर मालिक बीमार है अथवा चल बसा है तो वे मालिक के प्रति दुःख सहानुभूति दिखाते हैं, अपने मित्रों पर हमला नहीं करते तथा उनकी रक्षा भी करते हैं।

कुत्ते हमारे विकसित वातावरण के ही अंग हैं जैसे हम उनके वातावरण के अंग हैं, तथा एक दूसरे पर 'साझा प्रभाव' डालते हैं।

रक्षा कृषि अनुसंधान प्रयोगशाला
पिथौरागढ़ (उत्तरांचल)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक: *बायोटेक न्यूज (छमाही)*
सम्पादक: डॉ0 एस.आर. राव, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार ब्लाक–2, 7वाँ तल, सी.जी.ओ. काम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली–110003
पृष्ठ संख्या: 32 मूल्य: निःशुल्क

यह परम प्रसन्नता की बात है कि धीरे धीरे भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय के विभिन्न विभाग अपनी अपनी उपलब्धियों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए गृह पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू कर दिया है। इसका सबसे ताजा उदाहरण है जैव प्रौद्योगिकी विभाग की नवीन पत्रिका 'बायोटेक न्यूज' जिसका प्रवेशांक जनवरी 2003 में प्रकाशित हुआ है। यानी इसमें सारी सामग्री अंग्रेजी तथा हिन्दी दोनों में अगल बगल दी हुई है। इसमें बाईं ओर अंग्रेजी है तो दाहिनी ओर हिन्दी। इसके सारे शीर्षक एवं चित्र रंगीन हैं। सामग्री को अत्यन्त नयनाभिराम ढंग से सजाया गया है। कहीं कहीं कुछ सामग्री बाक्स में दी हुई है जो ध्यान को बरबस आकृष्ट करती है।

जैव प्रौद्योगिकी ज्ञान को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने का श्रेय जैव प्रौद्योगिकी विभाग की सचिव श्रीमती डॉ0 मंजु शर्मा को दिया जाना चाहिए। उन्होंने इस पत्रिका के प्रारम्भ में 'अपनी कलम से' से जो कुछ लिखा है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विभाग ने इस न्यूजलेटर के माध्यम से पाठकों के लाभ के लिए विभिन्न गतिविधियों के बारे में नवीनतम समाचार या विचार प्रकाशित करने का ठोस प्रयास किया है। इसका उद्देश्य भारत में जैव प्रौद्योगिकी के प्रति समझ पैदा करना तथा यह सुनिश्चित करना है कि बायोटेक वस्तुओं तथा सेवाओं को आम जनता की व्यापक स्वीकृति मिले।
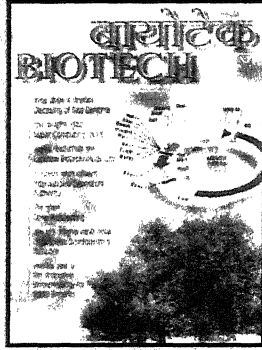
इस पत्रिका के द्विभाषी होने से सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि विज्ञान के लेखकों को अपनी रुचि के अनुसार अंग्रेजी के हिन्दी पर्याय मिल सकेंगे। इससे धीरे धीरे भाषा में निखार आवेगा और वह दिन दूर नहीं होगा जब जैव प्रौद्योगिकी में हिन्दी के मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेंगे। इस सर्वथा नवीन प्रयोग के लिए बधाइयाँ !

पुस्तक: *जैव प्रौद्योगिकी का संसार*
लेखक: डॉ0 डी.डी. ओझा
प्रकाशक: विद्या विहार नई दिल्ली
संस्करण: प्रथम पृष्ठ संख्या: 256
मूल्य: 250.00 रु0

जैव प्रौद्योगिकी एक सम्प्रयुक्त विज्ञान है जो अपने में जीव विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी दोनों को समेटे हुए है। आजकल पूरे विश्व में यह आधुनिक विकास का प्रतीक बन चुका है। विगत दो दशकों में जैव प्रौद्योगिकी की चतुर्दिक उपलब्धियाँ मीडिया में छाई रही हैं। शायद ही कोई समाचार पत्र या पत्रिका बची हो जिसमें जैव प्रौद्योगिकी के कारनामों का

उल्लेख न हुआ हो। मानव जीनोम तथा क्लोनिंग ने तो तहलका मचा दिया है। ऐसे विज्ञान के विषय में स्तरीय लोकप्रिय पुस्तकों का अभाव अत्यन्त खटने वाला है। यह तथ्य है कि जैव प्रौद्योगिकी के उच्च संस्थानों में अध ययन–अध्यापन के लिए विशेषज्ञों द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तकें उपलब्ध हैं। किन्तु आम पाठक के लिए हिन्दी में अभी तक कोई पुस्तक नहीं थी। डॉ0 ओझा ने, यद्यपि वे विषय विशेषज्ञ नहीं हैं, बड़े ही परिश्रम से 'जैव प्रौद्योगिकी का संसार' नामक पुस्तक लिखी है। विद्या विहार दिल्ली ने इस पुस्तक को प्रकाशित, करके पाठकों पर बहुत बड़ा उपकार किया है।

यह पुस्तक अपने आकर्षक आवरण पृष्ठ के कारण हजार पुस्तकों में पहचानी जा सकती है। इसके भीतर जो फोटो, आरेख या चित्र दिए गए हैं वे अत्यन्त सटीक एवं सुस्पष्ट हैं। पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दावली देकर लेखक ने बहुत ही सराहनीय कार्य किया है। इससे हिन्दी पाठकों को पारिभाषिक शब्दों के अंग्रेजी पर्याय भी मिल जावेंगे। पूरी पुस्तक में मानक हिन्दी शब्दावली का प्रयोग हुआ है, अंग्रेजी पर्यायों को बीच में नहीं दिया गया। हिन्दी शैली में ऐसी ही एकतानता अपनाई जानी चाहिए। पाठकों को हिन्दी शब्दों से अवगत कराने की यही सर्वोत्तम विधि है।

इस पुस्तक में कुी 11 अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में जैव प्रौद्योगिकी का ऐतिहासिक परिदृश्य प्रस्तुत किया गया है जो पुस्तक का महत्वपूर्ण अंश है। अगले अध्याय में जैव प्रौद्योगिकी की परिभाषाएँ दी गई हैं। अध्याय 3 में 'जीवन के अभिनय की रंगभूमि' शीर्षक के अन्तर्गत डी.एन.ए., जीन परिवर्तन, पुनर्योजी डी.एन. ए., कोशिका एवं ऊतक संवर्धन, जीन संश्लेषण, आनुवंशिक जीनियागरी पर विचार व्यक्त हुए हैं। अध याय 4 में सबसे महत्वपूर्ण विषय क्लोनिंग पर विस्तार से चर्चा है। इसमें डॉली की उत्पत्ति तथा क्लोनिंग से जुड़ी आशंकाओं पर विचार हुआ है। अध्याय 5 में ऊर्जा तथा जैव प्रौद्योगिकी एवं अध्याय 6 में कृषि विकास एवं जैव प्रौद्योगिकी के विविध पहलुओं पर विवेचन है। कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के सम्प्रयोग की सर्वाधिक संभावनाएं हैं भी। टेस्ट ट्यूब जंगल, बायो हलवा, शीर्ष–रोपण जैसे नवीन रोचक प्रसंगों पर भी चर्चा हुई है। अध्याय 6 का शीर्षक स्वास्थ्य सुरक्षा एवं जैव प्रौद्योगिकी है। इसमें हारमोन, इंटरफेरान, प्रतिजैविक पदार्थ, विटामिन, ऐमीनो अम्ल, जीन चिकित्सा, बायोसेंसर पर विस्तार से चर्चा है। अध्याय 8 पर्यावरण एवं जैव प्रौद्योगिकी से सम्बद्ध है। चाहे चमड़ा उद्योग हो या खनन, या कि धातु संक्षारण, सबों में जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका है। अध्याय 9 मानव जीनोम परियोजना पर है। अध्याय 10 में जैव प्रौद्योगिकी से उत्पन्न होने वाले खतरों का संकेत है तथा अध्याय 11 में भारत में जैव प्रौद्योगिकी का वर्तमान एवं भावी परिदृश्य दिया गया है।

पुस्तक की भाषा प्रवाहमयी है। यद्यपि पुस्तक में स्रोत ग्रन्थों का निर्देश नहीं है किन्तु देश में जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जो कार्य हो रहा है उसका विवरण हैदराबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'जिज्ञासा' तथा जैव प्रौद्योगिकी विभाग की रिपोर्टों पर आधारित है।

पाठकों को इस एक पुस्तक से जैव प्रौद्योगिकी की प्रारम्भिक जानकारी से लेकर उच्चस्तरीय शोधकार्य तक के विषय में वांछित ज्ञान–लाभ प्राप्त होगा।

डॉ0 शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग

पुस्तक : साधारण आविष्कारों की असाधारण सफलताएँ
लेखक : लक्ष्मण प्रसाद, विनोद कुमार मिश्र
प्रकाशन : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली–110001
मूल्य : 65 रुपये मात्र
पृष्ठ संख्या : 184
प्रथम संस्करण : 2002

मानव सभ्यता का विकास नित नये आविष्कारों एवं खोजों के कारण ही
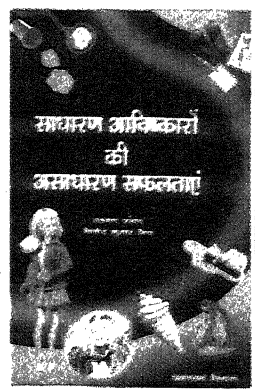
सम्भव हुआ है। इन खोजों एवं आविष्कारों के पीछे कुछ सघन एवं सृजनात्मक सोच होती है जो मानव को कुछ नया आकर्षक एवं उपयोगी कार्य करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। इसीलिए तो हर आयु वर्ग के स्त्री, पुरुष, गरीब–अमीर, शिक्षित एवं अशिक्षित भी कभी कभी कुछ नया काम कर न सिर्फ अपना जीवन सफल बनाते हैं बल्कि आमजन की कठिनाइयों को हल कर देते हैं एवं असंख्य लोगों को रोजगार के अवसर प्रदान कर देते हैं। उनके ये आविष्कार स्थल रसोईघर, कारखाना, मरम्मत की दुकान, प्रयोगशाला आदि हो सकते हैं।

इस परिपेक्ष्य में लिखी गई पुस्तक 'साधारण आविष्कारों की असाधारण सफलताएँ, अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक में आविष्कारों के इतिहास, उनके द्वारा समाज को दिए गए अद्वितीय योगदान के साथ साथ देश विदेश के 55 ऐसे प्रसंगों का उल्लेख है जिनसे आविष्कारकों को उनके आविष्कार के लिए न केवल उचित सम्मान मिला बल्कि वे आर्थिक रूप से अत्यन्त समृद्ध हुए।

पुस्तक के प्रथम अध्याय में आविष्कारों का अत्यन्त रोचक संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। प्रारम्भ में बड़ी प्रयोगशालाएँ नहीं थीं, व्यक्ति अपनी जीविका भी कमाता था और इसी बीच नई बातें सोचता था एवं नई खोज करता था। बहुत सी खोजें या तो अनायास ही हो गईं या किसी और कार्य को करते हुईं। द्वितीय अध्याय में थामस एल्वा एडिसन के जीवन के छुए अनछुए पहलुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। 12 वर्ष की आयु में माता–पिता से अनुमति लेकर रेलवे के डिब्बों में अखबार, नाश्ता, चाकलेट से लेकर सब्जी बेचने, 'वीकली हेराल्ड' नामक अखबार निकालने एवं 13 वर्ष की अवस्था में टेलीग्राफी की नौकरी, वेस्ट यूनियन की नौकरी के समय उसके बुरे दिनों का वर्णन मिलता है, तो 16 वर्ष की आयु में उसके पहले आविष्कार टेलीग्राफी की गति में सुधार, रेल कम्पनी में मरम्मत की नौकरी के साथ वोट रिकार्डिंग मशीन, ग्रामोफोन, बिजली के बल्ब, स्टोरेज बैटरी, पनडुब्बियों एवं जहाजों में सुधार सम्बन्धी आविष्कार का रोचक वर्णन है।

ऐसे भी आविष्कार हैं जो अत्यन्त मामूली थे पर उनके आविष्कारों में न सिर्फ नयी बात सोचने की क्षमता थी वरन् अपने किए गए काम का मूल्य समझने एवं व्यावसायीकरण करने में भी महारत हासिल थी। पुस्तक के अध्याय 3 में हेनरी हाइज द्वारा टमाटर की चटनी के आविष्कार का उल्लेख है जिसकी वार्षिक बिक्री 7.1 अरब डालर है तो अध्याय 4 में एक परेशान महिला टाइपिस्ट वैटे नैस्मिथ द्वारा सफेद नेल पालिश के आविष्कार एवं उसकी सफलता का रोचक पहलू है। इसी प्रकार अगले कुछ अध्यायों में खिलौनों, वेल्क्रो, थर्मस, लक्ष्मण प्रसाद की रेल टिकट मशीन, बाल रंगने की कला, यो यो, कैनवास के तम्बू के कपड़ो से जैकब डेविस द्वारा जीन्स की पैंट–शर्ट, जिम विनर की मोटर गाड़ियों के लॉक क्लब, टमाटर, नमक, सिरका एवं मिले मसाले से बने मिश्रण जिसे केचप के नाम से जानते हैं के आकर्षक साफ सुराहीदार बोतल में बंद केचप, कब्ज से निजात के लिए एक्सलेक्स और वॉर्डन द्वारा कंडेन्स्ड दूध, प्लास्टिक पेन, जिप फासनर, टवस्को आदि के बारे में विस्तार से जानकारी उपलब्ध करायी गयी है। अध्याय 21 में 1811 ई0 में न्यूयार्क में जन्मे इजाक मेरिट सिंगर जो 12 वर्ष की आयु में घर से भागकर सड़क पर कला प्रदर्शन करने वालों के समूह में शामिल हो गये थे के द्वारा सिलाई मशीन के विकास का वर्णन है। सन् 1850 में सिंगर बोस्टन गए तो वहाँ पर एक शाप देखी जहाँ ओर्सन फेल्प एक सिलाई मशीन तैयार कर उसे अंतिम रूप दे रहे थे। सिंगर ने फेल्प के माडल का अध्ययन किया और उसमें आवश्यक सुधार कर उसका पेटेन्ट कराया गया। इसी प्रकार अध्याय 42 में कण्डोम के विकास का वर्णन किया गया है। कण्डोम का जन्म कब, कहाँ और कैसे हुआ यह एक रहस्य ही है। अनुमानों के आधार पर यह माना जाता है कि मिस्र में यह सबसे पहले तैयार हुआ, इसके लिए खुर जानवरों की झिल्ली खास तौर से भेड़ की आँत से निकाली जाती थी। यह काफी पतला एवं लचीला होता था। जब कोलम्बस के जहाजी अमेरिका से वापस स्पेन

पहुँचे तो रास्ते में जगह–जगह बनाये गए यौन संबंधों के कारण सिफलिस रोग के शिकार हो गए। यह रोग यूरोप में फैल गया। बाद की शताब्दियों में इस रोग से बचाव के लिए कण्डोम की कल्पना की गई।

आगे के कुछ अध्यायों में चोट लगने के कारण, घास से खून को रोकने के लिए घाव को बंद करने के लिए बैंड के आविष्कार, कैंसास निवासी ह्यूज मूर द्वारा सार्वजनिक स्थलों एवं सार्वजनिक समारोहों में जीवाणुओं को फैलने से रोकने के लिए पेपर कणों के आविष्कार, वैसलीन के आविष्कार के अतिरिक्त अन्य आविष्कार जैसे– बालपेन, सेफ्टी रेजर, चाकू, महिलाओं के लिए टैम्पेक्स, साइलेंसर, क्रेयान, पेपर स्लिप, स्केटिंग, ग्रीटिंग कार्ड, आइसक्रीम सिली पुटी डायपर आदि का रोचक वर्णन है। लक्ष्मण प्रसाद की मिनी प्रिंटर, आलू के चिप्स, जेल–ओ कार्न फ्लैक्स एवं काफी, पाकेट डायरी, व्यायाम उपकरण आदि के बारे में काफी रोचक एवं ज्ञानवर्धक जानकारी दी गई है।

किसी नये कार्य को प्रारम्भ करने में अनेकों कठिनाइयाँ आती हैं एवं आविष्कारकों को इससे अनेक स्तरों पर जूझना पड़ता है। कई बार तो व्यक्ति इनसे जूझते बरबाद ही हो जाता है। पुस्तक के अन्तिम दो अध्यायों, आविष्कारकों के समक्ष चुनौतियों और उनके हल नामक अध्याय में कुछ सुझावों की चर्चा की गई है। आविष्कारक को आर्थिक सहायता, तकनीकी सहयोग, ग्राहक से सहयोग, पेटेंट, प्रचार–प्रसार की स्थिति का चित्रण किया गया है। प्राचीन भारत वैज्ञानिक प्रगति की चरम सीमा पर था। इस कारण वह वैभवशाली भी बना, पर वैभव अधिकांशतः शिथिलता भी ले आता है। अपनी प्रगति को और मजबूत करने, अपने वैभव को सुरक्षित रखने में हम असफल हो गए। परिणामतः मुट्ठी भर अफगानों, मुगलों और अंत में अंग्रेजों ने हमारे देश को रौंद डाला। ऐसे में स्वामी दयानन्द, राजा राम मोहन राय, विवेकानन्द आदि ने अपने विचारों से देश को सिंचित कर देश को गुलामी की जंजीरों से तोड़ने का काम किया। इस अध्याय में भारत की स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात् की राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक स्थितियों एवं उनका वैज्ञानिक प्रगति पर प्रभाव का विस्तृत वर्णन है।

पुस्तक अपने उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्ण रूप से सफल दिखाई देती है। यह समाज के हर वर्ग के लिए उपयोगी है। लेखकद्वय बधाई के पात्र हैं।

एम.पी. यादव
भौतिकी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ० हरीश कुमार को दोहरा सम्मान

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष डॉ0 हरीश कुमार को 21 मार्च 2003 को लखनऊ में आयोजित एक समारोह में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मानित किया गया। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के राज्यपाल आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री जी ने उन्हें अंगवस्त्र तथा प्रशस्ति पत्र प्रदान किया।

इसके पूर्व 27 फरवरी, 2003 को भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज्जतनगर, बरेली में आयोजित एक कार्यशाला में डॉ0 हरीश कुमार का अभिनन्दन किया गया और प्रशस्ति पत्र तथा स्मृति चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया गया।

विज्ञान परिषद् परिवार की बधाइयाँ !

–सम्पादक

गतिविधि

राष्ट्रीय कार्यशाला 'सूचना प्रौद्योगिकी के विविध आयाम' सम्पन्न

हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाब की स्थापना के पचहत्तरवें वर्ष में 15 तथा 16 फरवरी 2003 को ऐकेडमी सभागार में एक राष्ट्रीय कार्यशाला 'सूचना प्रौद्योगिकी के विविध आयाम' का आयोजन किया गया। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग भारत सरकार के सहयोग से आयोजित इस कार्यशाला के आयोजन में विज्ञान परिषद् प्रयाग तथा भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान इलाहाबाद की भी सक्रिय भूमिका रही।

कार्यशाला का उद्घाटन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो0 जी.के. मेहता ने किया। उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता प्रो0 चंद्रिका प्रसाद ने की। इस अवसर पर विज्ञान परिषद् के प्रधानमंत्री डॉ0 शिवगोपाल मिश्र, भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान के निदेशक डॉ0 एम.डी. तिवारी, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के वैज्ञानिक अधिकारी डॉ0 रामकृष्ण मिश्र तथा हिन्दुस्तानी ऐकेडमी के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय ने विचार व्यक्त किए। उद्घाटन सत्र का संचालन देवव्रत द्विवेदी ने किया।

कार्यशाला का उद्घाटन करते हुए प्रो. जी.के. मेहता

कार्यशाला के प्रथम सत्र की अध्यक्षता इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो0 वी.डी. गुप्त (लखनऊ) ने की। इस सत्र में श्री अनुपम अग्रवाल ने 'कम्प्यूटर के लिए हिन्दी साफ्टवेयर निर्माण' डॉ0 अनिल पाण्डेय, नई दिल्ली ने 'सूचना प्रौद्योगिकी और ग्रामीण विकास', श्री विनय कुमार बिंदल ने 'सूचना प्रौद्योगिकी के खतरे' तथा प्रो0 डी.के. राय, वाराणसी ने 'इन्टरनेट और विज्ञान शिक्षण' विषयों पर व्याख्यान प्रस्तुत किए।

द्वितीय सत्र की अध्यक्षता डॉ0 रमेश दत्त शर्मा, नई दिल्ली ने की। इस सत्र में डॉ0 श्रवण कुमार तिवारी (वाराणसी) ने 'सूचना प्रौद्योगिकी और अनुवाद' श्री तुरशन पाल पाठक (नई दिल्ली) ने 'विज्ञान लेखन और सूचना प्रौद्योगिकी' प्रो0 जी.एन. पाण्डेय (चित्रकूट) ने 'डिजिटल लाइब्रेरी' तथा श्री श्याम सुन्दर शर्मा (नई दिल्ली) ने 'सूचना प्रौद्योगिकी का विकास' विषयों पर आलेख प्रस्तुत किए।

कार्यशाला के दूसरे दिन तृतीय सत्र की अध्यक्षता प्रो0 एम.डी. तिवारी ने की। इस सत्र में डॉ0 कृष्णा मिश्रा ने 'टेलिमेडिसिन' डॉ0 डी.डी. ओझा (जोधपुर) ने 'सूचना प्रौद्योगिकी और विज्ञान लेखन' डॉ0 एन. सुंदरम (चेन्नई) ने 'दक्षिण भारतीय भाषाओं का कम्प्यूटरीकरण' तथा डॉ0 के.के. भूटानी ने 'इन्टरनेट के लिए हिन्दी लेखन' विषयों पर व्याख्यान दिए।

चतुर्थ सत्र की अध्यक्षता प्रो0 के.के. भूटानी ने की। इस सत्र में डॉ0 ओम विकास (नई दिल्ली) ने 'वैश्वीकरण के संदर्भ में सूचना प्रौद्योगिकी का लोकीकरण' डॉ0 के.एन. उत्तम ने 'सूचना प्रौद्योगिकी और नैनोतकनीक' तथा डॉ0 ऊषा सिन्हा (लखनऊ) ने 'भाषा और कम्प्यूटर' विषयों पर व्याख्यान दिए।

पांचवें और अंतिम सत्र की अध्यक्षता प्रो0 एन.सुंदरम ने की। इस सत्र में प्रो0 सूर्य प्रसाद दीक्षित (लखनऊ) ने 'सूचना प्रौद्योगिकी और साहित्य', डॉ0 राम किशोर शर्मा ने 'सूचना प्रौद्योगिकी और भाषा विज्ञान', श्री नीलेश जैन ने 'देवनागरी और हिन्दी का कम्प्यूटरीकरण– समस्यायें', श्री विजय चितौरी ने 'सूचना प्रौद्योगिकी और ग्रामीण पत्रकारिता' तथा श्री कुलदीप सिंह ने 'प्राचीन भारतीय साहित्य का संरक्षण' विषयों पर व्याख्यान दिए।

अन्त में डॉ0 रामकृष्ण मिश्र, डॉ0 शिवगोपाल मिश्र तथा श्री हरिमोहन मालवीय द्वारा धन्यवाद ज्ञापन के साथ कार्यशाला सम्पन्न हुई।

इस कार्यशाला में स्थानीय तथा देश के विभिन्न नगरों से आए 100 से अधिक प्रतिभागियों ने सक्रिय भागीदारी की।

–देवव्रत द्विवेदी

प्रो० व. सु. राममूर्ति
सचिव
PROFESSOR V. S. RAMAMURTHY
SECRETARY

भारत सरकार
विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय
विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग
टेक्नोलाजी भवन, नया महरौली मार्ग, नई दिल्ली-110 016

GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF SCIENCE & TECHNOLOGY
DEPARTMENT OF SCIENCE & TECHNOLOGY
Technology Bhavan, New Mehrauli Road, New Delhi-110 016

क्रमांक : सीओ/एमएस/01/2003 दिनांक : 06.03.2003

महोदय,

विज्ञान परिषद् प्रयाग के 10 मार्च 2003 को आयोजित होने वाले 90वें स्थापना दिवस में भाग लेने हेतु आपका दिनांक 24.02.2003 का पत्र मिला, धन्यवाद! मुझे खेद है कि चाहते हुए भी मैं अन्य व्यस्तताओं के कारण कार्यक्रम में भाग नहीं ले सकूंगा।

धन्यवाद।

भवदीय,

व.सु.राममूर्ति

(वी.एस. राममूर्ति)

डा. शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002

Telegram : SCIENCTECH • Telephone : 6510068/6511439
Fax : 0091-11-6863847, 0091-11-6862418 • E-mail : dstsec@alpha.nic.in

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1. रचनाएँ टंकित रूप में या सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जाएँ।
2. रचनाएँ मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3. अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4. रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जाएँ तो हमें सुविधा होगी।
5. नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया ज़ाएगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।
6. हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न–स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7. पत्रिका को अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझाव का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जाएगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :
भीतरी पृष्ठ पूरा 1000 रु0, आधा पृष्ठ 500 रु0, चौथाई पृष्ठ 250 रु0
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु0, आवरण चतुर्थ 4000 रु0

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं0 : (0532) 2460001